योगविद्या

वर्ष 15 अंक 8
अगस्त 2026

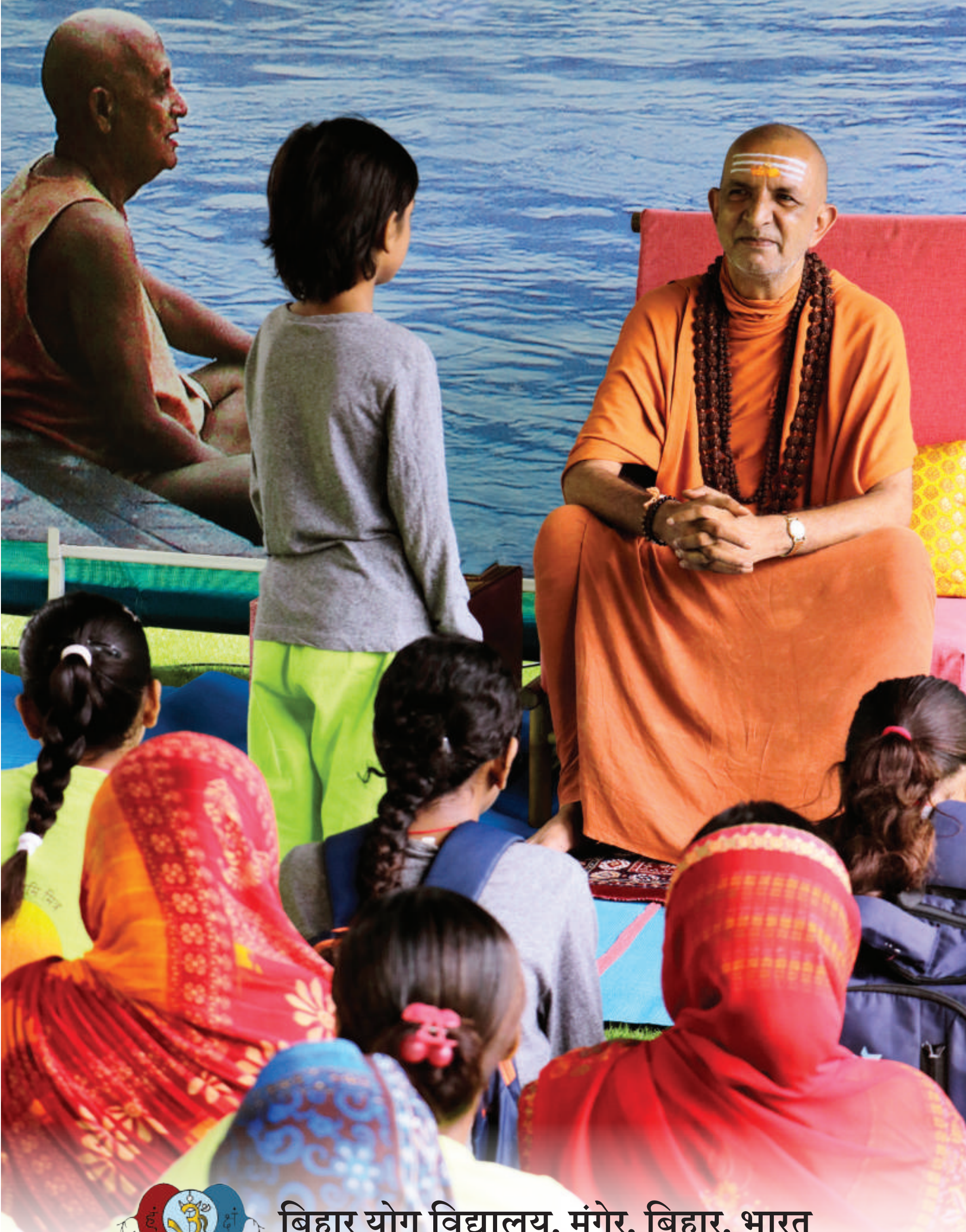

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

© Bihar School of Yoga 2026

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं प्लेट : वेद पारायण एवं गुरु पूर्णिमा 2026

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

संकीर्तन की महिमा

ईश्वर के दिव्य नामों के संकीर्तन से उत्पन्न मृदुल स्पन्दन भक्तों और साधकों को आसानी से मनोनियंत्रण के लक्ष्य की ओर ले जाते हैं। इन स्पन्दनों का मन पर सौम्य, लाभकारी प्रभाव पड़ता है। वे मन को उसकी पुरानी आदतों एवं संस्कारों से ऊपर उठाकर दिव्यता के उत्तुंग शिखरों तक ले जाते हैं। यदि साधक भाव और प्रेम के साथ संकीर्तन करता है तो आसपास के पेड़-पौधे और पशु-पक्षी भी प्रभावित होते हैं, और तदनुसार प्रतिक्रिया भी करते हैं। संकीर्तन का ऐसा शक्तिशाली प्रभाव होता है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

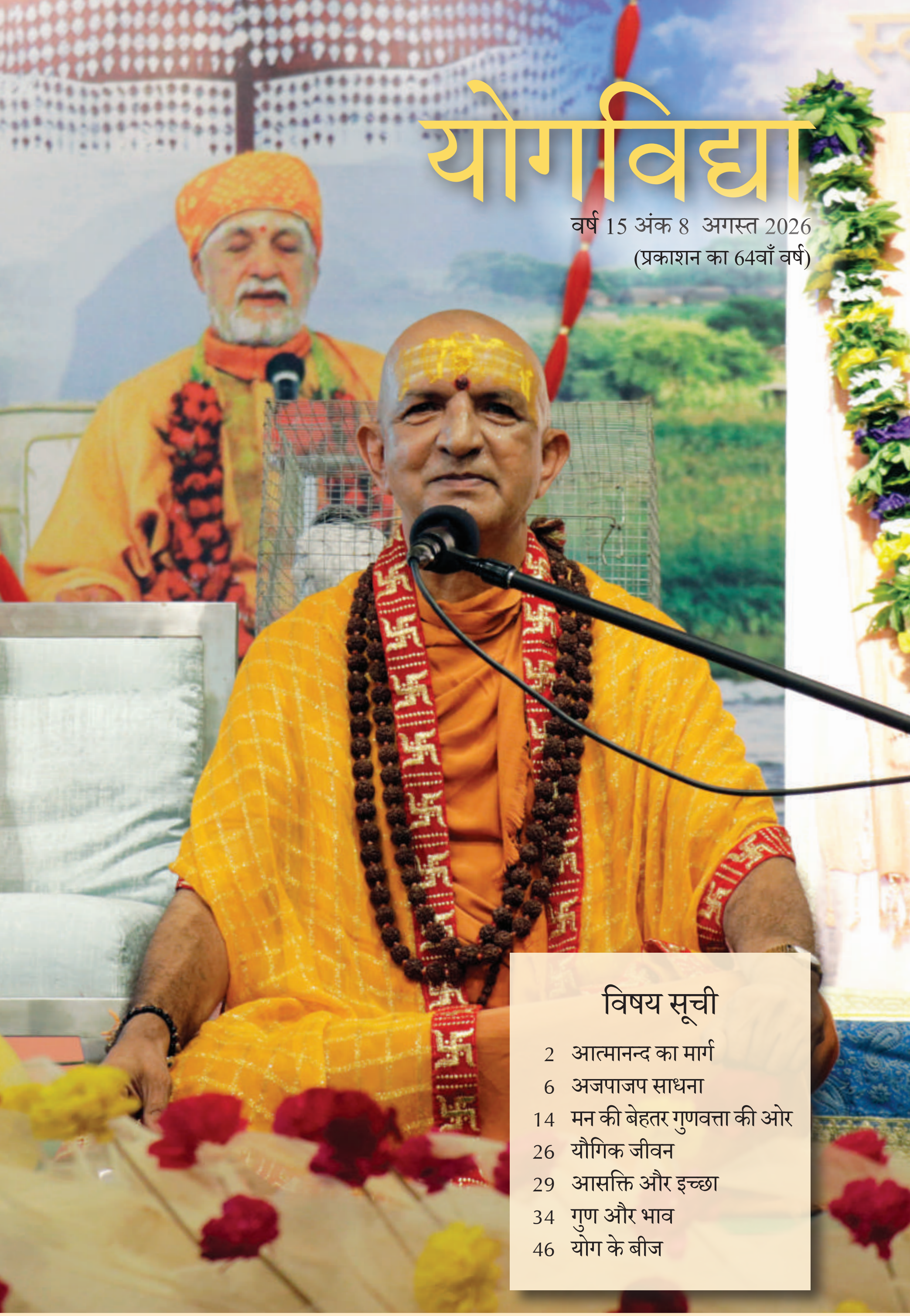

योगविद्या

वर्ष 15 अंक 8 अगस्त 2026
(प्रकाशन का 64वाँ वर्ष)

विषय सूची

2 आत्मानन्द का मार्ग
6 अजपाजप साधना
14 मन की बेहतर गुणवत्ता की ओर
26 यौगिक जीवन
29 आसक्ति और इच्छा
34 गुण और भाव
46 योग के बीज

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

आत्मानन्द का मार्ग

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

सृष्टि दो प्रकार की है, जीव-सृष्टि और ईश्वर-सृष्टि। ईश्वर-सृष्टि में कोई दुःख नहीं है। पानी से प्यास बुझती है। अग्नि से उष्णता मिलती है। शुद्ध वायु स्वास्थ्य देती है। वृक्षों से छाया मिलती है। गायें बढ़िया दूध देती हैं। परन्तु मेरी पत्नी, मेरा बच्चा आदि जो ममता के रूप हैं, सब जीव-सृष्टि हैं। इसमें दुःख है। 'घोड़ा मर गया' – इतना सुनने से कोई दुःखी नहीं होता। जब सुनते हैं कि 'मेरा घोड़ा मर गया', तब रोने-पीटने लगते हैं। मनुष्य के सारे दुःखों की जड़ यह ममता है। इस ममता को समाप्त करके आत्मानन्द में लीन रहना चाहिए।

जिस मनुष्य में देहाभिमान की अतिशयता है, अपने शरीर के प्रति अत्यन्त आसक्ति है, उसके लिए आत्म-ज्ञान अथवा जीव-मात्र के एकत्व का ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नहीं है। अपने शरीर और उसके अहंकार में लोग कितने व्यस्त हैं! मैं, मैं, हर कहीं 'मैं ही मैं'। मैं वैद्य हूँ, मैं अँग्रेज हूँ, मैं अमरीकी हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, मैं सर्वज्ञ हूँ, मैं चतुर हूँ, मैं कुशल हूँ, मैं बलवान् हूँ, मैं कर्त्ता हूँ, मैं धर्त्ता हूँ, मैंने बहुत दान-पुण्य किया है। मैंने अपने पिता के नाम पर अस्पताल बनवाया। इस 'मैं' का कहीं अन्त नहीं है। परन्तु ज्यों ही इस नाशवान् अशुचि शरीर का अध्यास मिटा और आपने जान लिया कि मैं यह शरीर नहीं हूँ, मैं तो सर्वव्यापी आत्मा हूँ तो तुरन्त सारे दुःख मिट जायेंगे। आप परम आनन्द को प्राप्त हो जायेंगे, अमर हो जायेंगे, अविनाशी आध्यात्मिक ऐश्वर्य के मालिक हो जायेंगे और अमरत्व के अमृत-पान से अमर लोक के निवासी हो जायेंगे।

पचास बम किसी भी बड़े शहर को मिटा सकते हैं, लेकिन पचास हजार बम भी इस अहंकार को मिटा नहीं सकते। इतना बलिष्ठ है यह अहंकार! अज्ञानी मनुष्य ने अपने व्यक्तित्व और ऐश्वर्य को लेकर बहुत सोचते-सोचते इस अहंकार को बहुत बढ़ा लिया है। हीरा भी शायद कभी गल जाए, परन्तु यह अहंकार गल नहीं सकता, यद्यपि उसमें कुछ सार नहीं है। भक्त इसे आत्म-समर्पण के द्वारा तथा मुनि वैराग्य एवं आत्म-जिज्ञासा से मिटा सकता है।

शिवाजी ने एक दुर्ग-निर्माण के कार्य में हजारों श्रमिकों को लगा रखा था। उन्हें बड़ा अभिमान था कि वे इतने लोगों का पालन कर रहे हैं। शिवाजी के गुरु स्वामी समर्थ रामदास जी यह समझ गये। उन्होंने शिवाजी को बुलाया

और महल के सामने ही पड़े हुए एक बड़े पत्थर को तुड़वाने के लिए कहा। शिवाजी ने एक नौकर से उसे तुड़वाया। पत्थर टूटा तो उसके अन्दर से एक मेंढक बाहर कूद पड़ा। स्वामी रामदास जी ने पूछा, 'शिवा, इस पत्थर के अन्दर इस छोटे से प्राणी को खाना कौन पहुँचाता है?' शिवाजी लज्जित हुए और गुरु को प्रणाम करके बोले, 'गुरु महाराज, आप अन्तर्यामी हैं। मैं समझता था कि इन श्रमिकों को मैं भोजन दे रहा हूँ। आपने मेरा अभिमान जान लिया। मुझे अब विवेक आया है। मेरी रक्षा कीजिए, मैं आपका शिष्य हूँ।'

बन्दरों को अपने बच्चों से बड़ी आसक्ति होती है। उनका बच्चा मर जाए तो वे उस शव को, कंकाल को लिये महीनों तक फिरते हैं। इस भौतिक शरीर

की आसक्ति ही मोह है। ये संस्कार प्राणि-जगत् से मानव-जगत् में आये हैं। इसीलिए पुरुष या स्त्री अपने बच्चे से बड़ा मोह रखते हैं।

आप अकेले पैदा हुए। मरोगे भी अकेले ही। जो भी समस्याएँ सामने आएँगी, अकेले ही आपको उनका सामना करना होगा। आपके भाग्य में जो कुछ है, उसे आपको अकेले ही भोगना पड़ेगा। तब फिर क्यों अपने बच्चों, स्त्री आदि से आसक्ति रखते हो, मिथ्या मोह में क्यों पड़े हो? आँखें खोलो। खड़े हो जाओ। सावधान हो जाओ।

प्रकृति को जीतने और आत्मा को पहचानने के लिए ही आपका जन्म हुआ है। अहंकार के स्वभाव और गतियों को समझने का प्रयत्न करो। वह स्व-उन्नति, स्व-प्रगति, सत्ता, सम्पत्ति और सुख की ओर खींचता है। उस अहंकार को, स्वार्थ को समाप्त करो। अनासक्त बनो। दैवी गुण, त्याग और निःस्वार्थता में अपनी श्रद्धा जमाओ। अपने जीवन का मुख्य लक्ष्य त्याग और निःस्वार्थ सेवा को बनाओ। तुरन्त ही अतीव सम्पन्न और विशाल आध्यात्मिक जीवन मिलेगा।

स्वयं को अपने शरीर, स्त्री, बच्चे या अन्य पदार्थों से मत जोड़ो। संग्रह की वृत्ति छोड़ो। किसी भी वस्तु के विषय में यह न कहो, 'यह मेरी है।' केवल एक विचार स्थिर करो, 'एकमात्र ब्रह्म है। वही प्रकाशमान् है। मैं ब्रह्म हूँ।' जीवन्मुक्त बनो। अद्वैत अथवा ब्राह्मी अवस्था का, जीवन्मुक्ति का आनन्द लो।

एक अंधेरे कमरे में एक घड़ा रखा है। उसके अन्दर जलती हुई बत्ती है, फिर भी कमरे में अंधेरा है। परन्तु ज्योंही वह घड़ा फोड़ दें, तुरन्त सारा कमरा एक पल में प्रकाशमान् हो जाता है। उसी प्रकार सतत् आत्म-ध्यान के द्वारा अविद्या को और उसके परिणामस्वरूप देहाध्यास को समाप्त कर दिया जाए तो सर्वत्र उस आत्म-प्रकाश का दर्शन होने लगेगा।

इस दृढ़मूल पुराने शत्रु अहंकार को मिटाने के लिए आत्मविचार के अतिरिक्त और कोई सक्षम आयुध नहीं है। मनुष्य मांस में जीता है। मांस खाता है। मांस को गले लगाता है। मांस ही अहंकार है। मांस ही विश्व है। माया मांस के द्वारा ही खेलती है। काली माता कभी मांस का भोग नहीं चाहती है। वह अहंकार का भोग चाहती है। वह अपने भक्तों से चाहती है कि वे अपना अहंकार समाप्त करें। काली माता को बलि देने के बहाने मूर्ख लोग बकरा काटते हैं और अपनी जिह्वा की लालसा बुझाते हैं। यह कितना भंयकर, अक्षम्य और घृणित पाप है!

सँपेरा साँप के दो विषैले दाँत उखाड़ देता है और उसके साथ निर्भय होकर खेलता है। तब भी साँप फन खोलकर फुँफकारता है, लेकिन सँपेरा जानता है कि वह उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। इसी प्रकार आप भी अपने दो विषैले दाँतों, अहंता और ममता को उखाड़ दें, तो फिर इस संसार में आप भी निर्भय होकर रह सकते हैं। आप जीवन्मुक्त बन जायेंगे और अन्तरात्मा में आनन्दपूर्वक रहेंगे।

जो सांसारिक दुःखों के कारण आत्म-हत्या करते हैं, वह पापमयी आत्म-हत्या है, परन्तु जो अहंकार, स्वार्थ, वासनाओं, इन्द्रियों, विचारों आदि की हत्या करते हैं, वे पवित्र हत्या करते हैं। मामूली कण्डे की राख माथे पर लगाने से क्या लाभ? अहंकार को जलाओ और उसकी राख माथे पर और शरीरभर में लगाओ।

यशोदा ने बालकृष्ण को एक छोटी-सी रस्सी से बाँधने का बहुत प्रयत्न किया। बाँधने के लिए एक रस्सी ले आयीं। वह दो अंगुल छोटी पड़ गयी। फिर बड़ी रस्सी ले आयीं। वह भी दो अंगुल कम पड़ गयी। इस प्रकार वे कई रस्सियाँ लाती गयीं, फिर भी सभी रस्सियाँ दो अंगुल छोटी पड़ ही जातीं। इसका अर्थ क्या है? क्या इसमें कोई दार्शनिक संकेत तो नहीं है? हाँ, इसमें बड़ा दर्शन है। यशोदा अहंकार से भरी हुई थीं। उनमें ममता भी बहुत थी। अपने बच्चे पर उन्हें बड़ा मोह था। भगवान कृष्ण उनका ममत्व और अहंकार मिटा देना चाहते थे। अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने माता को सिखाया कि 'हे माँ, अहंता और ममता छोड़ो। तब प्रेम के द्वारा मुझे बाँध पाओगी।'

रानी मक्खी को मार दें तो कोसों दूर तक फैलकर फूलों से मधु एकत्र करने वाली सारी मक्खियाँ भी तुरन्त मर जायेंगी। दीमक की भी यही स्थिति है। अफ्रीका के कुछ आदिवासियों में ऐसा है कि यदि एक आदमी को कोई पीड़ा हो जाए तो सैकड़ों मील दूर तक रहने वाले उस समाज के लोगों को भी वह पीड़ा होने लगेगी। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने प्रत्यक्ष निरीक्षण करने के बाद इन बातों को सत्य प्रमाणित किया है। प्राचीन आदिवासियों में इतनी गहरी आत्मीयता होती है! इसीलिए समाज का एक व्यक्ति पीड़ित हुआ तो सारे पीड़ित हो जाते हैं। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि विश्वात्मा एक ही है। प्रत्येक व्यक्ति अपना पृथक् अहंकार छोड़ दे, अहमन्यता का सिद्धान्त छोड़ दे और प्रयत्न करे, तो विश्वात्मा के साथ एकरूप हो सकता है और इस प्रकार सर्वोच्च दिव्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

अजपाजप साधना

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

अजपाजप का अभ्यास ब्रह्मचारी भी कर सकते हैं और गृहस्थ भी, मद्यपान करने वाले भी कर सकते हैं और सात्त्विक लोग भी। इसका अभ्यास सब जगह किया जा सकता है। जो जप अपने आप हो, वह अजपाजप है। तुम जो करते हो, उसको जप कहते हैं। तुम्हारा मन दिन को या रात को चलायमान रहता है या नहीं? उसको तुम चलायमान करते हो कि अपने आप वह चलायमान रहता है। हमारा मन अपने आप चलायमान रहता है। हम नहीं चाहते हैं तो भी वह चलायमान रहता है। उसको रोकते हैं तो भी चलायमान रहता है। उसको पिंजड़े में बन्द करते हैं, तो सूक्ष्म रूप से वह निकल भागता है। लोग कहते हैं, 'अरे! वह कहाँ चला गया।' वह बिलकुल पी.सी. सरकार की तरह जादूगर है, उसको जितनी अच्छी तरह से देखते हो, वह उतनी अच्छी तरह से भागता है।

हमलोग बचपन में ध्यान करते थे। हमारे पण्डित जी हम से कहते थे, 'चंद्रमा पर ध्यान करो।' जब हम ध्यान करते तब चन्द्रमा से मन कहीं और चला जाता था। गुरुजी पूछते थे, 'तुम्हारा मन कहाँ चला गया?' हमको तो पता ही नहीं कि मन कहाँ चला गया। जब देखा, तो वह घूमता-भागता पहुँच गया पिक्चर हाऊस या फुटबॉल ग्राउंड में। अब बड़े हो गये, हो सकता है कि अब नियंत्रण में आ जाये।

मन स्वाभाविक रूप से चलायमान रहता है। स्वाभाविक रूप से चलायमान मन जब व्यस्त रहता है, तब वह स्वाभाविक रूप से पकड़ में रहता है। दूसरी बात याद रखो, प्राणों का असर मन पर पड़ता है और मन का प्राणों पर। दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। अगर तुम प्राणों को नियंत्रित करोगे, तो मन नियंत्रित होता है। अगर मन को नियंत्रित कर सको, तो प्राण नियंत्रण में आता है। अजपाजप में प्राणों के द्वारा मन को नियंत्रित किया जाता है। दिन में कभी भी बैठ जाओ और आँखों को बन्द करके नासिका के अग्रभाग पर अपनी दृष्टि को स्थिर करो, आँखों को खोलकर नहीं। इसको कहते हैं नासिकाग्र दृष्टि। जब नासिकाग्र दृष्टि करो, उस समय तुमको श्वास का अन्दर जाना और बाहर आना साफ-साफ मालूम पड़ना चाहिए। इस अवस्था में श्वास तुमको स्पष्ट दिखलायी देगी। मात्र उसको देखते जाना है, कुछ करना नहीं है।

श्वास की सजगता

मैं श्वास लेता हूँ और मैं श्वास छोड़ता हूँ, ऐसा मालूम होना चाहिए। श्वास का तुम पीछा करो, उसको देखते जाओ। देखते-देखते कुछ दिनों के बाद तुमको इस श्वास के पीछे एक आवाज सुनाई देगी, जोर से नहीं, बल्कि एक अनुभव के रूप में। तुमको ऐसा मालूम पड़ेगा कि अन्दर जाने वाली श्वास में 'सो' और बाहर आने वाली श्वास में 'हं' की आवाज आ रही है। तुम सुनोगे नहीं, तुमको प्रतीत होगा कि श्वास में 'सोऽहं, सोऽहं' चल रहा है। यह अपने आप होता है। इसके लिए प्रयत्न करने की जरूरत नहीं। केवल श्वास को देखते जाओ। यदि 10 मिनट आसन में बैठ सको तो 10 मिनट करो। यदि एक बार में नहीं कर सको, दो बार में करो, तीन-चार-पाँच बार में करो। जोर लगाकर नहीं करना। सहज रूप से करना। यदि मन नकारात्मक उत्तर दे, तो नहीं करना, क्योंकि मन को तो दोस्त बनाना है तुमको! अगर तुम पहले ही दिन झगड़ा कर लोगे, तो नदी में रहकर मगर से बैर करना ठीक नहीं होगा।

जीवन की जो समस्यायें हैं, उनका हल तुम केवल मन से करने जा रहे हो। मन ही समस्या है और मन ही समस्या का समाधान! जब तुमको मन की समस्या का हल करना हो, उसके संकल्प से आगे बढ़ना हो, तो उसके साथ बैर करना ठीक नहीं है। मन कहता है, आज नहीं करना है। बोलो, ठीक है, आज नहीं करना है। तब कब करेंगे? रात को करेंगे, कहो ठीक है। मन बड़ा मजेदार है। अगर तुम उसे पटा सको, तो सब कुछ ठीक हो जायेगा। मन अगर पट गया, तो बिलकुल आज्ञाकारी कुत्ते के समान हो जाता है। जो कहोगे सो करेगा और जब बिगड़ गया, तो यह भयंकर हो जाता है। भौंकता रहता है। इस मन को योगी लोग जानते हैं।

कुछ दिनों तक तुम श्वास को देखते जाओ, कुछ दिन में वृत्ति पलट जायेगी। जब वृत्ति पलट जाती है, तब 'सोऽहं' की जगह 'हंसो हंसो' चलने लगता है, इसको कहते हैं उलटा नाम। जब 'हंसो' होने लगे तब समझना तुम्हारा मन अन्दर होने लगा है। प्रत्याहार हो गया या हो रहा है, उस समय ध्यान शुरू करो।

ध्यान के आधार

ध्यान करने के लिये तीन केन्द्र होते हैं – भ्रूमध्य, नासिकाग्र और अनाहत। वैसे तो अधिक हैं, पर मुख्य-मुख्य बात बतलाता हूँ। जो भावनापूर्ण, भक्तिमार्ग वाले होते हैं, वे हृदय में ध्यान करते हैं। राजयोग वाले नासिकाग्र पर अपने

मन को टिकाते हैं। जिस प्रकार धीरे-धीरे सूक्ष्मदर्शी यंत्र को फोकस करते जाते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे मन को भी एकाग्र करना होता है। पहले उसका क्षेत्र बहुत बड़ा होता है, कुछ समय बाद उसे एक बिन्दु पर लाया जाता है। जैसे, ॐ बिन्दु है, ज्योति बिन्दु है, प्राण-रूप बिन्दु है, त्रिकोण बिन्दु है, कृष्ण का रूप बिन्दु है, गुरु का रूप बिन्दु है और देवी का रूप भी बिन्दु है। जब कोई प्रतीक यहाँ पर जाग्रत होता है, उसको कहते हैं बिन्दु। कोई शब्द जो दिमाग में सुनाई देता है, उसको कहते हैं नाद।

नाद और बिन्दु मन को टिकाने के लिए दो आधार हैं। मान लो, तुम्हारा बिन्दु शिवलिंग, ज्योति या कृष्ण का रूप है। उसको तुम किसी एक स्थान पर प्रत्यक्ष रूप से देखने की कोशिश करो। जो बाहर है, वही अन्दर दिखलाई देगा। बाहर में जो रूप दिखलाई देता है, वह तुम्हें इन्द्रियों से दिखलाई देता है। आँखें बंद करके जब तुम उसी रूप को देखते हो, तो वह अन्तःकरण से, आत्मा से दिखता है। इसीलिए कहते हैं, 'बाहर के पट बंद कर अंदर के पट खोल'।

अंदर के पट को खोलने की दूसरी क्रिया होती है। जब तक यह अन्दर का पट नहीं खुलेगा, तब तक तुम्हारे भगवान केवल बाहर रहेंगे। यह इन्द्रियगम्य है, आत्मगम्य नहीं। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि तुम आँखों से मत देखो। मेरे कहने का मतलब है कि इन शक्तियों को केवल इन्द्रियों से नहीं, बल्कि आत्मा से भी देखने की कोशिश करो। और, सब इसे कर सकते हैं। यह सरल क्रिया है।

अजपाजप के प्रभाव और लक्षण

इस अजपाजप को जब हम सिद्ध करते हैं, तब क्या होता है, इसके क्या लक्षण हैं? इसके बारे में गुरु गोरखनाथ ने एक पद लिखा है, जिसे आप ध्यान से सुनो –

ऐसा जाप जपौ मन लाई, सोहं सोहं अजपा गाई॥
आसण दिढ करि धरौ धियानं, अहनिसि सुमरौ ब्रह्मगियानं।
जाग्रत न्यंद्रा सुलप अहारं, काम क्रोध अहंकार निवारं॥
नासा अग्र निज, ज्यौ बाई, इडा प्यंगुला मधि समाई।
छह सौ सहस इकीसौ जाप, अनहद उपजै आपहि आप॥
बंकनालि में उगै सूर, रोम-रोम धुनि बाजै तूर।
उलटै कमल सहस्त्रदल बास, भ्रमर गुफा महिं जोति प्रकास॥
सुणि मथुरा गोरख कहै, परम तत ते साधु लहै॥

बंकनाल का मतलब होता है रीढ़ की हड्डी। सूर माने सूर्य और 'रोम-रोम धुनि बाजे तूर' – एक-एक रोम में आवाज की अनुभूति होने लगती है। सुनते हैं कि एक मुसलमान संत था, वह अनलहक, अनलहक बोलता था। मुसलमान लोग बहुत नाराज होते थे, कहते थे कि यह काफिर है। अपने को खुदा बोलता है – मैं खुदा हूँ, मैं सब कुछ हूँ, मैं सत्य हूँ। उन्होंने कहा कि इसकी चमड़ी निकाल दो। मुसलमानों ने उसको पीटते-पीटते उसकी चमड़ी निकाल दी, पर फिर भी उस आदमी के एक-एक अंग से आवाज आती थी। यही है 'रोम-रोम धुनि बाजे तूर'। कबीरदास जी का एक पद है –

बंगला अजब बना महाराज, जिसमें नारायण बोले।
इस बंगले के दस दरवाजे, बीच पवन का खम्भा।
आवत-जावत कुछ नहीं देखे, यह भी एक अचम्भा।

यह जो पवन का खंभा है, इसको साधु लोग कमल की नाल कहते हैं। यह कमल की नाल है, सहस्रार कमल का फूल है और मूलाधार कमल की जड़ है। इसमें जब सुषुम्ना नाड़ी चलती है, तब इसमें प्रकाश आने लगता है।

अजपाजप से सबसे पहले अनहद नाद की प्राप्ति होती है। अजपाजप का पुरस्कार क्या है? अनहद नाद। अनहद नाद क्या है? नाद वह होता है, जिसकी एक हद होती है। अभी यह जो मैं बोल रहा हूँ, इसकी हद है, सीमा है और एक नाद होता है, अनहद। वह नाद मुँह से नहीं आता और न ही कान से सुनाई देता है। मगर जिसको साधु, संत और साधक लोग अन्दर सुनते हैं, उसी को कहते हैं, अनहद नाद। वह अनहद नाद जब प्रकट होता है, तब संत-महात्मा उसको अलग-अलग ढंग से बतलाते हैं। कबीर का एक पद है –

घूँघट के पट खोल रे, तोहे पिया मिलेंगे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, अनहद बाजत ढोल॥

यहाँ पर अनहद की कल्पना उस महात्मा ने ढोल से की है। मगर ऐसा नहीं समझना कि केवल ढोल ही अनहद होता है। दरिया साहब कहते हैं –

मुरली कौन बजावै हो, गगन-मण्डल के बीच।
त्रिकुटी-संगम होय कर, गंग-जमुन के घाट।
वा मुरली के शब्द से, सहज रचा बैराट॥
मुरली कौन बजावै हो, गगन-मण्डल के बीच॥
गंग-जमुन बिच मुरली बाजे, उत्तर दिशि धुनि होहि।
वा मुरली की टेरहिं सुनि-सुनि, रहीं गोपिका मोहि॥
मुरली कौन बजावै हो, गगन-मण्डल के बीच।
जहँ अधर डाली हँसा बैठा, चुगत मुक्ता हीर।
आनन्द-चकवा केलि करत है, मानसरोवर तीर॥
मुरली कौन बजावै हो, गगन-मण्डल के बीच।
शब्द-धुन मिरदंग बजत है, बारह मास बसन्त।
अनहद् ध्यान अखण्ड आतुरवे, धारत सब ही सन्त॥
मुरली कौन बजावै हो, गगन-मण्डल के बीच।
कान्हा-गोपी नृत्य करत हैं, चरन-वपुहि बिना।
नैन बिना 'दरियावा' देखे, आनन्द-रूप घना॥
मुरली कौन बजावै हो, गगन-मण्डल के बीच।

आखिर में वे कहते हैं – शब्द-धुन मिरदंग बजत है। उस अनहद नाद को शब्द कहते हैं। एक ध्वनि वह होती है, जो हम बोल रहे हैं, मैं इसका उच्चारण कर रहा हूँ। इसका आदि है, इसका अंत है। पर मुँह तुम्हारा बंद हो जाए, मस्तिष्क बंद हो जाए, आँख बंद हो जाए, इन्द्रियाँ बंद हो जायें, हम तुम्हारे कान को भी बंद कर देते हैं, तो भी शब्द सुनाई पड़ता है। उसको कहते हैं शब्द। गाना तो गाया जाता है, ध्वनि तो उच्चरित होती है और शब्द श्रवण किया जाता है। शब्द-धुन मिरदंग बजत है – अब देखो इसको मृदंग की उपमा देते हैं। मीराबाई को अनुभव होता है कि –

सुनी री मैंने हरि आवन की आवाज।
महल चढ़ि जाऊँ मोरी सजनी, कब आवै महाराज॥
दादुर मोर पपीहा बोलै, कोइल मधुरै साज।
उमग्यो इन्द्र चहुँ दिस बरसै, दामिन छोड़ी लाज॥
मीरा के प्रभु गिरधरनागर, बेग मिलो महाराज।

यहाँ अभी अनहद की बात हो रही है, ध्यान योग की बात नहीं हो रही है। जैसे ही तुमको अनहद की ध्वनि सुनाई पड़ने लगे, तब समझ लेना कि तुम नजदीक पहुँचने लगे हो। आगे बोलती है, महल चढ़ि जाऊँ मोरी सजनी कब आवै महाराज। इसका मतलब छः मंजिलों वाला महल। आधार तल है मूलाधार, पहली मंजिल – स्वाधिष्ठान, दूसरी मंजिल – मणिपुर, तीसरी मंजिल – अनाहत, चौथी में विशुद्धि और पाँचवीं मंजिल है आज्ञा, तब जाकर सहस्रार आता है। जब तुम्हारे दरवाजे पर किसी आदमी के जूते की आवाज होती है, तब तुमको पता चलता है कि कोई आ रहा है। वैसे ही अपने अन्दर छुपी हुई भगवत् शक्ति का जब जागरण होने लगता है, तब उस समय कुछ लक्षण प्रकट होते हैं। यह लक्षण इस प्रकार बताया है, 'मुरली कौन बजावे हो गगन मण्डल के बीच'। दूसरे संत बोलते हैं – शब्द-धुन मिरदंग बजत है, बारह मास बसन्त। तीसरे संत क्या बोलते हैं, 'बाजे अनहद ढोल'। और चौथे संत क्या बोलते हैं?

बरसे बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की।
सावन में उमग्यो मेरो मनवा, झनक सुनी हरि आवन की॥
उमड़ घुमड़ चहुँ देस से आयो, दामिनी दमके झर लावन की।
नन्ही नन्ही बूंदन मेघा बरसे, शीतल पवन सुहावन की॥
मीरा के प्रभु गिरधरनागर॥

मतलब यह हुआ कि ध्यान की अवस्था में अजपाजप गहरा होता है और 'सोऽहं' पलटकर 'हंसो' हो जाता है – *उलटा नाम जपत जग जाना, बालमीकि भये ब्रह्म समाना।* वाल्मीकि बेवकूफ नहीं थे कि मरा-मरा बोलते। वे उलटा नाम जपते थे, और उलटा नाम है 'हंसो'।

जब अजपाजप गहरा होता जाता है, तब साधकों को यह नाद सुनाई देने लगता है और कई प्रकार के अनुभव होते हैं। यह अनुभव कितने प्रकार के होते हैं! यदि मैं इसका विश्लेषण करूँ तो रात बीत जाये। केवल संतों के पद कहूँ, तो रात-की-रात बीत जायेगी। किसी को लगता है कि चारों तरफ पानी-ही-पानी बरस रहा है। कहाँ पर था, मुझको याद नहीं, मैं बैठा था, लगा कि बड़े जोर से पानी बरस रहा है, मेरे चारों ओर पानी-ही-पानी है, मेरी गाड़ी भी पानी में है और मैं पानी से घिरा हूँ। बड़ा मजा आ रहा था उस समय। यही है, 'बरसे बदरिया सावन की'। शब्द क्या सुनाई पड़ता है, 'दादुर मोर पपीहा बोले, भनक पड़ी प्रिय आवन की' अर्थात् ध्यान की गहरी अवस्था में तुम्हें लगेगा कि तुम्हारे अन्दर ईश्वरीय शक्ति का, आत्मचेतना या दिव्य चेतना का जागरण हो रहा है।

जब मनोमय कोष खुलता है, तब उस समय अहंकार, काम, क्रोध इत्यादि का नाश हो जाता है। जब विज्ञानमय कोष खुलता है, तब साधक के पास गुणों का खजाना आ जाता है, अनेक प्रकार के अनुभव होते हैं। अनहद नाद ईश्वर की आवाज है। वह आत्मा की आवाज है। इसको प्राप्त करने से प्राणी

एकदम पवित्र हो जाता है, इसीलिए आज मैंने आप लोगों के सामने यह ध्यान की बात बताई। आप पूजा करते हो, बिलकुल ठीक। आप रामायण पढ़ते हो, वह भी ठीक है। मगर एक बात याद रख लो, तुम्हारी अलमारी में कितने ही मिष्टान्न क्यों न रखे हों, जब तक तुम उनको खाओगे नहीं, उसका मजा नहीं आ सकता। तुम बोलते रहो कि इसमें हलुवा है, इसमें यह है, इसमें वह है, इसमें यह डाला है, इसमें वह डाला है, मुँह में पानी भर आयेगा, पर उतना मजा आयेगा नहीं। साधना की बात तुम कितनी ही सुनो, पर बात, बात ही होती है।

इस देश के निवासी मूलतः साधक हैं। मैं एक या दो की बात नहीं, इस देश के सभी निवासियों की बात बोल रहा हूँ। यह धरती साधकों की है, मगर आज हम इस मार्ग से वंचित होते जा रहे हैं। आप लोगों के लिए सब चीजों की सुविधा है, मगर साधना मार्ग की सुविधा नहीं है। आपका खान-पान, रहन-सहन, सब कुछ साधना के उपयुक्त है। आपको ज्यादा बदलने की जरूरत नहीं है। दूसरे देश के लोगों को मैंने देखा है, उनको बड़ी मुश्किल से साधना के मार्ग में लाया जाता है। यहाँ सब कुछ ठीक है, केवल उस राह पर चलना है। आज इस देश के निवासी जिस संस्कृति को छोड़ते जा रहे हैं, सारी दुनिया उसी संस्कृति को अपनाने की कोशिश कर रही है। सारी दुनिया जिस संस्कृति से सम्बन्ध-विच्छेद करना चाह रही है, आज हिन्दुस्तान उसको स्वीकार करना चाह रहा है।

मैं दो प्रयोजन लेकर संन्यस्त हुआ हूँ, जिनमें एक है – मनुष्य को ध्यान की पूर्ण प्राप्ति के लिए योग का अभ्यास कराना। किसी भी प्रकार का भोग हो, हम उसका विरोध नहीं करने जा रहे हैं और करते भी नहीं हैं। जीवन को समर्थ रूप से प्राप्त करने के लिए योग के द्वारा अपनी इन्द्रियों को कुशाग्र बनाओ, संवेदनशील बनाओ। योग को अपने परिवार की संस्कृति का रूप दो। इसके बारे में सब लोगों को विचार करना चाहिए। अगर यह संस्कृति हमारे परिवारों में नहीं रही, हमारे देश में नहीं रही, तो दुनिया को मार्गदर्शन कोई नहीं दे सकता। ये बड़े-बड़े लोग दुनिया का मार्गदर्शन नहीं कर सकते। दुनिया का मार्गदर्शन योग की पूर्णावस्था को प्राप्त व्यक्ति ही कर सकता है।

मैं आपके गोंदिया में सन् 1956 से आ रहा हूँ। आज फिर आपके यहाँ यह बतलाने आया हूँ – *योगं शरणं गच्छामि। संघं शरणं गच्छामि। सत्यं शरणं गच्छामि।* ये तीन हमारे जीवन, समाज और राष्ट्र के सूत्र हैं – योग की शरण लेता हूँ, संघ की शरण लेता हूँ, सत्य की शरण लेता हूँ।

– 10 जुलाई 1979, गोंदिया

मन की बेहतर गुणवत्ता की ओर

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

योग चक्र हमारे गुरु, श्री स्वामी सत्यानंद जी द्वारा प्रस्तुत किया गया सिद्धान्त है। योग चक्र को जीने के लिए अपनी सजगता को बदलना होगा, क्षण-प्रतिक्षण सजग रहना होगा। इसके बिना हम योग चक्र को अपने जीवन में नहीं उतार सकते। इसके लिए हमें योग के बारे में अपनी समझ को बदलना होगा ताकि यह योग-कक्षा तक ही सीमित न रहे, बल्कि हमारी सामान्य दिनचर्या का भी अंग बन जाए।

उदाहरण के लिए, प्राणायाम का अभ्यास कक्षा में दस-बीस मिनट तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। जब आपकी साँस उखड़ रही हो तो क्या आप अपनी सजगता का उपयोग करके साँसों को पुन: संतुलित कर सकते हैं? जब आपका दिल तेज़ी से धड़कने लगे तो क्या आप सजगता और श्वास-विज्ञान का उपयोग करके खुद को नियंत्रित कर पाते हैं? क्या आप योग कक्षा के बाहर भी लंबी और गहरी साँसें ले पाते हैं?

योग चक्र का प्रयोजन योग के सिद्धांतों को अपने जीवन में लागू करना है और इसका एक निश्चित उद्देश्य है। कल मैंने आपसे एक प्रश्न पूछा था – जीवन क्या है? हालाँकि सभी ने एक तरह से सही उत्तर दिए, लेकिन वे जीवन की एक बौद्धिक और दार्शनिक समझ को दर्शाते हैं। वास्तविकता यह है कि हम मन के माध्यम से जीवन जी रहे हैं। जीवन वह है जो हम अपने मन में जीते हैं। ध्यान अपने मन पर ही केंद्रित रहता है। आप अभी मन में जो महसूस कर रहे हैं, वही आप जी रहे हैं और अनुभव कर रहे हैं। दूसरा पक्ष जीवनशैली है, जो अपने अनुभव की सक्रिय अभिव्यक्ति है। जिसे हम जीवनशैली कहते हैं, वह हमारी मानसिक प्रकृति की बाहरी अभिव्यक्ति है, जो कर्म, व्यवहार और विचार के माध्यम से व्यक्त होती है। यही जीवन और जीवनशैली का वास्तविक, व्यावहारिक अर्थ है।

योग और मन

योग क्या है? आत्म-साक्षात्कार, समाधि या मोक्ष को योग की पराकाष्ठा न समझें। योग की पहली व्यावहारिक उपलब्धि को बुद्धि, भावना और कर्म

की प्रसुप्त क्षमताओं के जागरण के रूप में समझा जा सकता है। यही योग की पहली आकांक्षा या लक्ष्य है। उन सुप्त क्षमताओं को जगाने के लिए आपको उन्हें जानना होगा, उन्हें समझना और साकार करना होगा। आप कैसे जानते हैं कि आपके अंदर क्या है? आपके अंदर क्या क्षमताएँ, सामर्थ्य और गुण हैं? हर किसी का मन अलग होता है। कोई सोना हो सकता है, कोई कोयला हो सकता है। अगर मुझे अपने मन में सोना मिलता है तो मैं आपके मन से वैसी ही उम्मीद नहीं करता क्योंकि आपके मन में कोयला हो सकता है, सोना नहीं।

हर किसी की मानसिकता अलग होती है, संस्कार और कर्म अलग होते हैं। हर किसी की योग यात्रा एक अलग बिंदु से प्रारंभ होती है, जहाँ हम अपने आपको खोजने लगते हैं। खोज की उस प्रक्रिया में हमें अपनी क्षमताओं, गुणों और सामर्थ्यों का एहसास होता है। हमें उन बाधाओं और रुकावटों का भी एहसास होता है, जो हमें पीछे धकेलती हैं और आगे बढ़ने नहीं देतीं। हम बाधाओं और रुकावटों को दूर करने या उनसे पार पाने का रास्ता खोजने की कोशिश करते हैं। यही योग की साधना है। एक बार बाधा हट जाए तो मार्ग आसान हो जाता है। योग का पहला अनुभव है खुद से और अपने अंतर्निहित गुणों से, सत्त्व के स्वभाव से जुड़ना। यही पहली अभिलाषा है।

लोग अलग-अलग कारणों से योग की ओर आते हैं। मुझे याद है कि सत्तर के दशक में जब हम पहली बार योग प्रचार के लिए बाहर गए थे तब दुनिया

में दो तरह के योग शिक्षक थे – संन्यासी और गैर-संन्यासी। संन्यासियों में परमहंस योगानंद, बाबा नित्यानंद, बाबा मुक्तानंद और इस तरह के अन्य गुरु शामिल थे। गैर-संन्यासियों में रिचर्ड हिटलमैन जैसे योग प्रचारक थे। दिलचस्प अंतर यह था कि गैर-संन्यासी योग शिक्षक, जो जाने-माने और मान्यता प्राप्त थे, हठयोग के प्रशिक्षण पर ध्यान केंद्रित करते थे – शारीरिक स्वास्थ्य और सौंदर्य विकसित करने के लिए, जबकि संन्यासी कुंडलिनी-योग, क्रियायोग और शक्तिपात जैसी उच्च साधनाओं के प्रचार में लगे थे। अस्सी के दशक तक यही स्थिति थी। स्वामी सत्यानंद जी की संभवतः एकमात्र प्रणाली थी जो बीच के वर्ग के लिए थी। यह केवल शारीरिक या उच्च आध्यात्मिक पक्षों तक सीमित नहीं थी, बल्कि इसने लोगों को मन और प्राण के माध्यमिक आयामों का अन्वेषण करने के लिए प्रेरित किया।

जब हम मन के बारे में सोचते हैं तो हम कहते हैं कि यह चेतना का अंग है। साथ ही, यह ऊर्जा का भी हिस्सा है। मन चेतना और ऊर्जा से बना है। चेतना के ज्ञान और जीवनी शक्ति या प्राण का संयोजन मन है। आपने कागज पर छपी तस्वीर देखी होगी। यह द्वि-आयामी होती है। इसे चेतना की छाप या संज्ञान समझिये। लेकिन जब आप प्राण जोड़ते हैं तो द्वि-आयामी छवि त्रि-आयामी हो जाती है और आप इसे सभी तरफ से देख सकते हैं। यह एक रूप और आकार ले लेती है, यह एक विशेष आयाम में मौजूद रहती है।

मन को न केवल एक संज्ञानात्मक क्षमता के रूप में देखा जाना चाहिए, बल्कि एक प्राणिक क्षमता और प्राणिक अभिव्यक्ति के रूप में भी देखा जाना चाहिए। योग ने हमेशा इसी बात पर जोर दिया है। राजयोग मन और प्राण की समझ पर जोर देता है। साथ ही अनुभव की निम्न अवस्था को उच्चतर अवस्था में रूपांतरित करने की आवश्यकता पर जोर दिया जाता है। इस प्रकार हमारी कोई भी भावना, चाहे वह सतही, स्थूल और सांसारिक क्यों न हो, एक उच्चतर भावना बन सकती है, यदि उसके भीतर प्राण और चेतना सही हों। शास्त्रीय राजयोग मन के संस्कारों को बदलने और उसे अभिव्यक्ति के किसी अन्य स्रोत से जोड़ने के मार्ग को परिभाषित करता है।

राजयोग की दो प्रणालियाँ हैं। मूल प्रणाली वैदिक परम्परा से प्रभावित है और हम इसी की चर्चा कर रहे हैं जहाँ चेतना और प्राण को एक इकाई के रूप में देखा जाता है। स्थूल भौतिक स्तर पर जब हम अपनी इंद्रियों से जुड़े होते हैं तो चेतना और प्राण इंद्रियों के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं। इस आयाम

में वे सीमित होते हैं। आध्यात्मिक आयाम में, जहाँ इंद्रियों या किसी प्रकार की मनोदशा से कुछ भी सीमित नहीं होता, चेतना और ऊर्जा को शिव और शक्ति के रूप में देखा जाता है।

यद्यपि मूल राजयोग ने संकेत दिया कि ऊर्जा और चेतना का विलय होना चाहिए, महर्षि पतंजलि ने राजयोग के सिद्धांत को सांख्य के दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया। समय के साथ उनके योगसूत्र लोकप्रिय हो गये और आज लोग इसी कृति को पहचानते हैं। लेकिन यह सांख्य विचारधारा के अनुसार राजयोग की एक शाखा मात्र है। महर्षि पतंजलि ने मन को ही सब कुछ माना है और मन को परिष्कृत एवं सिद्ध करने पर जोर दिया है। उनके मतानुसार यम-नियमों के अभ्यास से अपने व्यवहार, दृष्टिकोण, आदतों और समझ को बदलकर मन की पूर्णता प्राप्त की जा सकती है। वे यह मानकर चलते हैं कि आप सभी विधियों को जानते हैं, इसलिए किसी भी विधि का विवरण नहीं है। केवल उनके नाम और उनसे प्राप्त होने वाले परिणामों के संक्षिप्त विवरण हैं।

महर्षि पतंजलि मन की उन विभिन्न अवस्थाओं को परिभाषित करते हैं जो मन के विकसित और अधिकाधिक सूक्ष्म होने से उभरती जाती हैं। प्रत्याहार और धारणा में आप विभिन्न अभ्यासों द्वारा मन का अवलोकन, नियंत्रण, संशोधन और प्रबंधन कर सकते हैं। इसके बाद ध्यान आता है, जो एक अवस्था है, अभ्यास नहीं। समाधि भी एक अवस्था है, अभ्यास नहीं। महर्षि पतंजलि ने आठ प्रकार की समाधियों का वर्णन किया है। सबीज और निर्बीज, सविचार और निर्विचार, सविकल्प और निर्विकल्प समाधियाँ होती हैं, जिसका मतलब कि समाधि की अवस्था में भी बीज, विचार और विकल्प बने रहते हैं। इस प्रक्रिया में मानसिक अनुभव का संशोधन होते रहता है। यह आध्यात्मिक बोध और अनुभव की अंतिम अवस्था नहीं है। अंत में आप अस्मिता समाधि तक पहुँचते हैं जिसका अर्थ है अहंकार रहित समाधि। इससे पहले आप हमेशा अहंकार की सीमा में थे। पातंजल योग सूत्रों के अनुसार इसके बाद ही आनंद समाधि, यानी परमानंद की अवस्था आती है।

उन्होंने पूरी मानसिक प्रक्रिया का वर्णन किया है, लेकिन प्राणिक प्रक्रिया को अलग रखा है, यद्यपि इस प्राणिक प्रक्रिया का वर्णन मूल राजयोग में किया गया है। तथ्य स्पष्ट है – किसी वस्तु का संज्ञान हमेशा एक द्वि-आयामी छाप छोड़ता है, लेकिन जब संज्ञान के साथ प्राण शक्ति जुड़ती है तो वह उसे त्रि-आयामी छवि में बदल देती है जिससे वह जीवंत हो जाती है। यही जीवन

में अभिव्यक्ति बन जाती है। हमारा उद्देश्य यह सीखना है कि मन की बेहतर गुणवत्ता बनाए रखने के लिए हम अपने अभ्यासों और दिनचर्या को कैसे नियंत्रित करें।

अपना प्रयोजन जानिए

जब आप काम करने दफ्तर जाते हैं तो आपके दिमाग में क्या चल रहा होता है? महीने का वह दिन जब आपको तनख्वाह मिलेगी, हमेशा दिमाग के किसी कोने में रहता है। आप हमेशा अपने पेशे को उस तनख्वाह से जोड़ते हैं जो आपके लिए प्रेरक बन जाती है। जब आप योग का अभ्यास करते हैं तब आपके दिमाग में क्या प्रेरक होता है? जब आप जिम जाते हैं तो इरादा साफ होता है – मैं कसरत करने जा रहा हूँ। जब आप योग करते हैं तो इरादा क्या होता है? किसी ने अभी तक इसके बारे में नहीं सोचा है। प्रयोजन क्या है?

आत्म-कल्याण ही योग का प्रयोजन है। योग का पहला चरण आपकी प्रसुप्त प्रतिभाओं को जागृत करना है, और अगला चरण आपकी जीवनशैली को आध्यात्मिक बनाना है। पहले स्तर में प्रतिभाएँ रचनात्मक बनती हैं और दूसरे स्तर में जीवनशैली आध्यात्मिक बनती है। ये दोनों योग का प्रयोजन और लक्ष्य बन जाते हैं।

जब आप आसन-प्राणायाम का अभ्यास करते हैं तो केवल यह न सोचें कि ये आपको शारीरिक स्वास्थ्य, लचीलापन, गतिशीलता या आरोग्य प्राप्त

करने में मदद कर रहे हैं, बल्कि यह भी सोचें कि ये शरीर में प्राणिक प्रवाह को संतुलित कर रहे हैं। प्राणिक प्रवाह के संतुलन के साथ मन भी अधिक शांत और स्थिर होते जाता है। इस पूरे अनुभव से गुजरें – इसे देखें और जानें। इस प्रकार, अपने अभ्यास को एक केंद्र और दिशा दें।

हम सुबह तीन मंत्रों के साथ अपना अभ्यास शुरू करते हैं। इसका उद्देश्य क्या है? अपने अवचेतन मन में एक सकारात्मक संकल्प, विचार और एक सकारात्मक सोच को भरना। जब हम सुबह उठते हैं तो बिस्तर से उठने से पहले, तंद्रा की अवस्था में ही, जब हम आधे जगे, आधे सोए होते हैं, तब हम अच्छे स्वास्थ्य, रचनात्मकता और जीवन में कष्टों और कठिनाइयों को दूर करने के लिए संकल्प लेते हैं। प्रत्येक संकल्प के साथ हम संबंधित मंत्र का जप करते हैं – महामृत्युंजय मंत्र, गायत्री मंत्र और दुर्गाजी के 32 नाम, जो प्राणिक प्रणाली में एक विशेष स्पंदन को उद्दीप्त करते हैं। आज एक कम्पन के रूप में जो शुरू हुआ है, वह समय के साथ एक लहर बन जाता है और हम जीवन में परिवर्तन और रूपांतरण का अनुभव करते हैं। इस प्रकार अपने जीवन और दिनचर्या को एक निश्चित प्रयोजन देना शुरू करें। आपका परिवार और अर्थव्यवस्था तो मात्र आपका सामाजिक जीवन है। आपका पूरे जीवन पर ध्यान केंद्रित होना चाहिए।

दो बातें स्पष्ट हैं – हमें योग को अपने जीवन में शामिल करना होगा और एक बार जब हम इसे जीना शुरू कर देते हैं, तो यह एक जीवनशैली बन जाती है। अगर आप घर पर अपने जीवन जीने के तरीके पर गौर करें, तो आपको पता चलेगा कि आप जो जी रहे हैं, वह आप अपने मन से, अपनी अपेक्षाओं और इच्छाओं के माध्यम से जी रहे हैं। यह आपको स्थिरता नहीं देती, बल्कि और ज्यादा बेचैनी और निराशा पैदा करती है। क्या इसे सुधारा और संतुलित किया जा सकता है? हम सभी योगी नहीं हैं। हम सभी कामकाजी लोग हैं। मैं भी काम करता हूँ, आप भी काम करते हैं। आपका एक पेशा है, मेरा भी एक पेशा है। आपका एक घर है, मेरा भी घर है। आपका एक परिवार है, मेरा भी परिवार है। हम सभी इसमें संलग्न हैं, लेकिन क्या इस संलग्नता में हम ज्यादा सजग हो सकते हैं? हाँ, यह संभव है।

हमारी सजगता कहाँ से शुरू होती है? इस समझ से कि हम जीवन से क्या चाहते हैं। आखिर हम जीवन से क्या चाहते हैं? खुश रहना एक घटक है। निराश न होना और तनाव को बेहतर ढंग से प्रबंधित कर पाना दूसरा घटक

है। अधिक आत्मविश्वासी और आशावादी होना, अधिक सहनशक्ति और स्पष्टता का होना अन्य घटक हैं। हर कोई अपना चयन कर सकता है। जिस चुनाव की ओर हम आकर्षित होते हैं, वही प्रारंभिक बिंदु है। हम उस प्रारंभिक बिंदु का उपयोग अपने भीतर सकारात्मक स्थिति बनाने के लिए कर सकते हैं।

निरंजन चुनौती

स्वामी शिवानंद जी ने प्रतिपक्ष भावना का विचार दिया, और मुझे लगता है कि सकारात्मकता से जुड़े रहने के लिए यही उनकी मुख्य शिक्षा है। स्वामी सत्यानंद जी ने हमें योग चक्र की समझ दी जो व्यक्तिगत रूपान्तरण से रचनात्मक अभिव्यक्ति की ओर ले जाता है। अगर हम इन दोनों को एक साथ देखें, तो व्यक्तिगत रूपान्तरण हठयोग, राजयोग और क्रियायोग के माध्यम से होता है, जबकि रचनात्मक अभिव्यक्ति कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग के माध्यम से होती है। सकारात्मकता से संबंध उस क्षण-प्रतिक्षण की सजगता से बनता है जो हमें यह बताती है कि हम कितनी देर तक अपनी प्रसन्नता और सकारात्मकता से जुड़े रह पाते हैं। इन दो घटकों का एक साथ आना जरूरी है।

हम सबेरे के मंत्रों से अपने दिन की शुरुआत करते हैं। उस नींद भरी अर्ध-चेतन अवस्था में आपके मन में जाने वाले पहले विचार या संकल्प शारीरिक स्तर पर स्वस्थ और तन्दुरुस्त रहने, मानसिक रूप से रचनात्मक और स्पष्ट होने तथा जीवन में आने वाली परेशानियों और कठिनाइयों पर विजय पाने की कामना को दर्शाते हैं। यहाँ कामना ने एक सकारात्मक स्वरूप ले लिया है। यह हमारी सकारात्मक आवश्यकताओं से जुड़ी है – स्वास्थ्य एवं आरोग्य, शांति एवं रचनात्मकता, सद्भाव और आनन्द। हर सुबह यह विचार अवचेतन मन में डाला जा रहा है। एक महीने बाद अपने मन और उसके व्यवहार का अवलोकन कीजिये, आपको स्पष्ट अंतर दिखाई देगा।

साथ ही आपको व्यावहारिक और यथार्थवादी भी होना है, आप अपने अनुभवों के प्रवाह में नहीं बह सकते। देखिए कि आप वहाँ से अगले स्तर तक कैसे पहुँच सकते हैं। अगर आप वाकई ऐसा करना चाहते हैं तो एक खेल में शामिल हो सकते हैं। यह खेल एक एप्प है जो 'निरंजन चुनौती' के नाम से आने वाला है। इसमें 22 चुनौतियाँ हैं और आपको हर महीने एक चुनौती पूरी करनी होगी। अगर आप एक चुनौती पार कर लेते हैं और उसे जीवन में उतारने में सफल हो जाते हैं, तभी आपको अगली चुनौती में जाने

की अनुमति मिलेगी। पहली चुनौती सरल है, मैं आपको उसके बारे में एक संकेत देता हूँ – स्वामी शिवानंद जी द्वारा बताये गये 18 सद्गुण, और उनमें पहला गुण है शांतता।

अपनी दिनचर्या में जिन सामान्य परिस्थितियों से आप जूझते हैं, क्या आप कल की तुलना में आज ज्यादा समय तक शांति बनाए रख सकते हैं? क्या आप आज अपने घर में खेलते हुए बच्चों के शोरगुल में भी अपनी शांति बनाए रख सकते हैं? मैं इस बात पर जोर देने की कोशिश कर रहा हूँ कि कक्षा में दी गई शिक्षाएँ केवल आपको अभ्यासों की जानकारी और समझ दिलाने के लिए हैं, वास्तव में उन शिक्षाओं को अपने सामान्य जीवन में जीना है। इसलिए अपने लिए एक चीज चुनें और उसे एक हफ्ते, और फिर एक महीने तक जीने की कोशिश करें।

प्रसन्नता भी निरंजन चुनौती का हिस्सा है। क्या आप अपने जीवन में चौबीस घंटे, यानी एक पूरा दिन प्रसन्न रह सकते हैं? आपको हर दिन खुश रहने की जरूरत नहीं है, बस अपने जीवन में एक दिन, चौबीस घंटे खुश रहें। यह एक उपलब्धि होगी। अगर हम अपने जीवन में एक दिन भी खुश रहते हैं तो हम हर दिन खुश रह सकते हैं और रहेंगे। क्या ऐसा हो सकता है? या यह सिर्फ एक सिद्धांत है, स्वामीजी द्वारा कही गयी अच्छी बात भर है? नहीं। इसे एक चुनौती के रूप में लेना होगा, क्योंकि चुनौतियाँ प्रेरणा और बल लाती हैं।

जब योगाभ्यास की बात आती है तो लोग आलसी हो जाते हैं। जब आप जिम जाते हैं तो आप क्या करते हैं? अगर आज आप कोई कसरत दस बार करते हैं, तो कल आप ग्यारह बार करने के लिए जोर लगाते हैं। अगर आप ग्यारह बार कर पाते हैं तो अगले दिन बारह की कोशिश करते हैं। हर दिन आप एक बढ़ाते जा रहे हैं, लेकिन योग कक्षा में आप हर दिन कम करते जाते हैं। आप कहते हैं, 'दस बहुत ज्यादा है, मैं आज नौ ही करूँगा। नहीं, मुझे लगता है कि नौ भी बहुत ज्यादा है, मैं आठ ही कोशिश करता हूँ, यह मेरे लिये सही बैठेगा। नहीं, आठ के साथ भी मुझे थोड़ा असहज महसूस होता है, मैं सात पर आ जाऊँगा।' इस तरह, योगाभ्यास के दौरान आपका प्रयास कम होते जाता है और कोई प्रगति नहीं होती। अपने अभ्यास की संख्या कम करके आप लाभों को भी सीमित और कम कर रहे हैं। जबकि इसका उल्टा होना चाहिए। हर दिन आपको अपने पिछले दिन के रिकॉर्ड को तोड़ने का प्रयास करना चाहिए। ऐसा आपको आसानी और आराम के साथ कर लेना चाहिए।

यम और नियम

निरंजन चुनौती में सफल होने के लिए जीवनशैली यम-नियमों की जानकारी और अभ्यास आवश्यक है। मैं उन जीवनशैली यम-नियमों का संक्षिप्त परिचय दूँगा। जब लोग योग का अध्ययन करते हैं तो वे प्राय: महर्षि पतंजलि के योग सूत्र पढ़ते हैं जहाँ उन्हें 'यम' और 'नियम' शब्दों का परिचय मिलता है। भाष्यकार इन शब्दों का अर्थ योग के नैतिक उपदेशों के रूप में लगाते हैं। यह पाश्चात्य और ईसाई विचारों से प्रभावित समझ है जो मानती है कि एक निश्चित तरीके से जीने और व्यवहार करने का अर्थ नैतिकता या सदाचार है। इस दृष्टिकोण से यम-नियमों को योग के नैतिक पक्ष के रूप में पहचाना जाता है। लेकिन यह वास्तविक अर्थ या सही अनुवाद नहीं है। यम का अर्थ है लंबे समय तक धारण करना, बनाए रखना। आप लंबे समय तक किस चीज को धारण करते हैं? किसी सकारात्मक गुण को विकसित करना और उसे लंबे समय तक धारण करना ही यम का वास्तविक अर्थ है।

योग की प्रत्येक शाखा में यम-नियमों का एक समूह होता है जो उसके अभ्यासों से जुड़ा होता है। हठयोग में बीस-बीस यम-नियमों का एक पूरा समूह है, जबकि राजयोग में महर्षि पतंजलि ने केवल पाँच यम और पाँच नियम प्रस्तुत किए हैं। हालाँकि, पारम्परिक राजयोग में पाँच से अधिक यम-नियम होते हैं। इन्हें अभ्यास में ही एकीकृत कर लिया जाता है ताकि एक ऐसी स्थिति बनायी जा सके जो अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय कोषों के स्तरों पर प्राण और चेतना में सामंजस्य ला सके।

हठयोग सप्त भूमिकाओं को भी परिभाषित करता है जिन्हें विकसित किया जाना चाहिए। ये मन की स्थितियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। हठयोग में बीस यम, बीस नियम और सात भूमिकाएँ हैं। ये उन परिवर्तनों का संकेत देते हैं जिनसे अपने भीतर गुजरना होगा और अपनी उच्च प्रकृति के विभिन्न अनुभवों को प्राप्त करना होगा।

पारम्परिक राजयोग में दस यम और दस नियम होते हैं। ये ऐसी स्थितियाँ या मनोदशाएँ हैं जिन्हें हम जीवन में जीते हैं। जैसे हम भय और चिंता, क्रोध और निराशा को भावनाओं के रूप में अनुभव करते हैं, वैसे ही हम इन मनोदशाओं को भी अपने मन में तरंगों के रूप में अनुभव कर सकते हैं। यम-नियमों के साथ हमारा जो संबंध विकसित होता है, वह हमारे व्यवहार की अभिव्यक्ति बन जाता है।

जीवनशैली के महत्त्वपूर्ण घटक वे हैं जिन्हें हमें एक साथ लाना होगा – योग के अभ्यासों और विभिन्न गतिविधियों की एक व्यावहारिक दिनचर्या। आप अपनी जीवनशैली को कैसे परिभाषित करते हैं? आपकी जीवनशैली कैसी है? कुछ लोग कह सकते हैं कि यह पेशे-उन्मुख जीवनशैली है या परिवार-उन्मुख जीवनशैली है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि वे वर्तमान में क्या जी रहे हैं। अन्य लोग कह सकते हैं कि यह खेल-उन्मुख जीवनशैली है, पर्यटन-उन्मुख जीवनशैली है, आवारा-जीवनशैली है, जंगली-जीवनशैली है या शाकाहारी-जीवनशैली है इत्यादि।

क्या जीवनशैली को समझने का यही सही तरीका है? लगभग अस्सी साल पहले स्वामी शिवानंदजी ने कहा था, 'विक्षेप हमेशा रहेंगे, आप उनसे बच नहीं सकते। मृत्यु हमेशा रहेगी। विनाश हमेशा रहेगा। संघर्ष और चिंताएँ हमेशा रहेंगी। हमें उनके साथ जीना होगा। जो अब तक बाह्य था, वह भविष्य में व्यक्तिगत और आंतरिक हो जाएगा।' यही हम देख रहे हैं। पहले समस्याएँ बाहर से आती थीं, अब वे अंदर से आ रही हैं।

आराम और संघर्ष

उदाहरण के लिए, हम मूल प्रवृत्तियों की बात करते हैं – आहार, निद्रा, भय और मैथुन। क्या आप इन सहज प्रवृत्तियों को अपने जीवन में जी पाते हैं या नहीं? सौ प्रतिशत? नहीं, आप इन सहज प्रवृत्तियों को नहीं जीते। आप इन सहज प्रवृत्तियों के संशोधित रूपों को जीते हैं। अगर नींद वाकई एक सहज प्रवृत्ति है, तो फिर आप सोने के लिए नींद की गोलियाँ क्यों लेते हैं? आप अब नींद की उस सहज प्रवृत्ति का उपयोग नहीं करते। सोने के लिए आपको नींद की गोली की जरूरत होती है। मतलब आपकी नींद की सहज प्रवृत्ति अब नहीं रही।

भय के साथ भी यही बात लागू होती है। पहले भय स्वाभाविक था और बाघ, शेर, साँप, अँधेरा, भूत, राक्षस या रात में आपको पकड़ने की ताक में बिस्तर के नीचे पड़े किसी काल्पनिक कंकाल से पैदा होता था। ये स्वाभाविक भय थे। आज आपका भय यह है कि किसी ने आपको फेसबुक पर पसंद नहीं किया। अब कोई स्वाभाविक भय नहीं रहा।

जहाँ तक आहार की बात है, हम भोजन का सेवन इसलिए करते थे कि यह जीवन के लिए आवश्यक था। आज लोग खाने के लिए जीते हैं। इस प्रकार आहार की प्रवृत्ति भी अपनी स्वाभाविक अवस्था में नहीं है। अब यह कृत्रिम हो गयी है।

जिन बुनियादी चीजों को हम पहले जीते थे, अनुभव करते थे, वे बदल गई हैं। वे जीवन में निराशा और विक्षेप का कारण बन गई हैं। स्वामी शिवानंद जी अस्सी साल पहले इसी बात का जिक्र कर रहे थे जब उन्होंने कहा था, 'भविष्य में चीजें अंदर से उभरेंगी।' मूल प्रवृत्ति के संदर्भ में भी कुछ ऐसा है जो अंदर से आ रहा है। हम सो नहीं पाते। निद्रा की मूल प्रवृत्ति कहाँ चली गई? हम बहुत ज्यादा खाते हैं, अपने पेट को जरूरत से ज्यादा भर लेते हैं और मोटे होते जाते हैं। आहार की वह प्रवृत्ति कहाँ चली गई जो पोषण की लालसा थी, लालच नहीं?

हमारी वर्तमान जीवनशैली निश्चित रूप से वैसी नहीं है जैसी हमारे इतिहास में लंबे समय तक हुआ करती थी। जिस दिन पहला मानव पृथ्वी पर उभरा था, उस दिन से लेकर आज तक की अवधि को अगर हम चौबीस घंटे की अवधि मानें, तो तेईस घंटे चालीस मिनट तक हम एक खानाबदोश और कृषि प्रधान जीवनशैली जीते थे, जिसमें हमारा शरीर लगातार गतिशील रहता था। यह कभी स्थिर नहीं रहा, सुरक्षा और संरक्षण की तलाश में, चारा और शिकार की तलाश में, रोजाना बीस, तीस या पचास किलोमीटर पैदल चलता था।

इन चौबीस घंटों में हमने तेईस घंटे और चालीस मिनट खानाबदोश जीवन जीते हुए बिताए हैं। औद्योगिक या आधुनिक युग में प्रवेश करने के बाद, केवल पिछले 'बीस मिनटों' में ही स्थिति बदली है। कल्पना कीजिए कि तेईस घंटे और चालीस मिनट तक इंद्रियों, शरीर और मन की किस तरह की स्थिति रही, और देखिए कि पिछले बीस मिनटों में क्या हुआ है। मानसिक अवधारणा, संज्ञान, अनुभूति, जानकारी और संलग्नता में पूर्ण परिवर्तन आ गया है। हमारा जीवन अब मौलिक रूप से बदल चुका है।

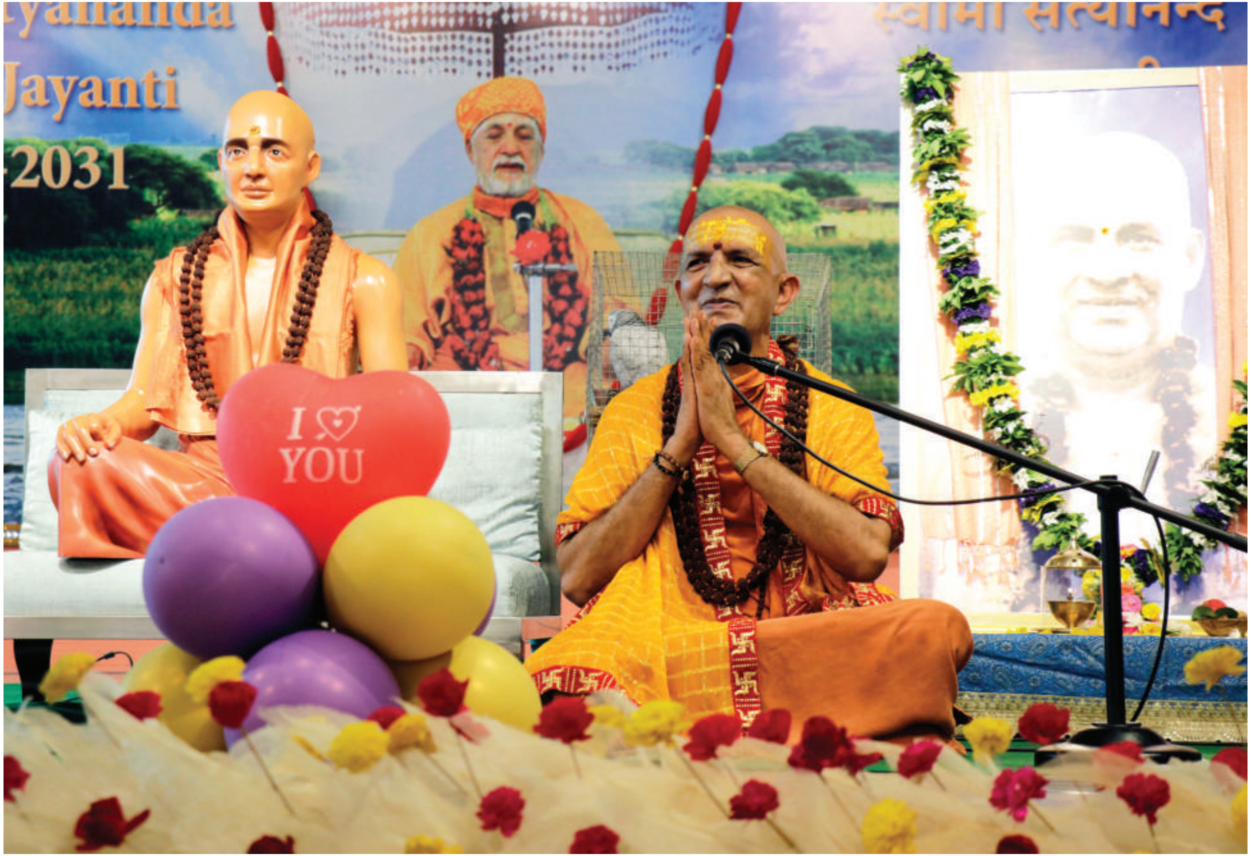
Jayanti
2031
I YOU

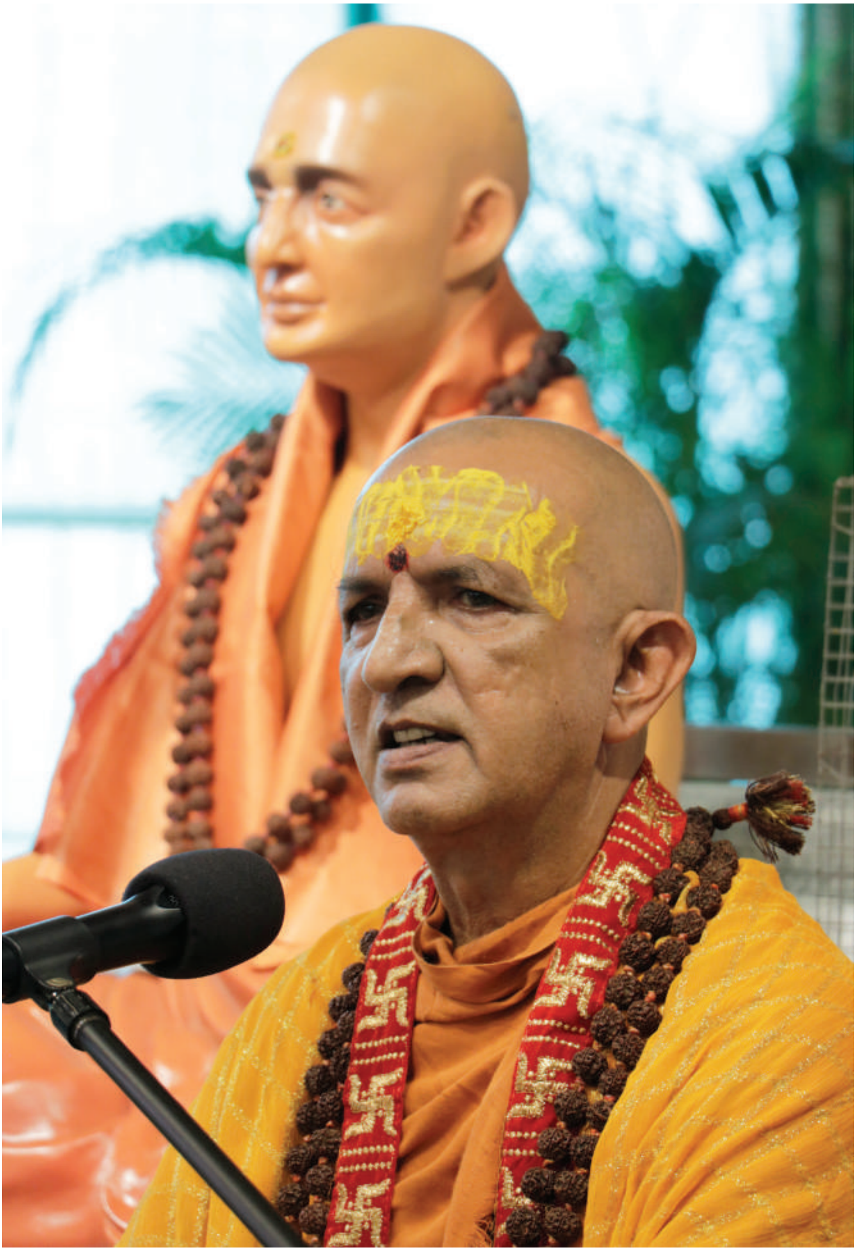

मूलतः हमारा शरीर और जीवन सक्रिय भागीदारी के लिए है, न कि स्थिर अवस्था के लिए। जैसे हमारा मन स्वाभाविक रूप से गतिशील है, वैसे हमारा शरीर भी स्वाभाविक रूप से सक्रिय है और इसे ऐसे ही बनाए रखना है। लेकिन आज लोग सक्रियता से ज्यादा आराम को पसंद करते हैं, और यह आराम कष्ट का कारण बनता है। आराम आनंद नहीं, बल्कि कष्ट देता है और मन को कमजोर करता है। जब आश्रम में कुछ नहीं था, उस समय लोग आराम से वातावरण के साथ तालमेल बिठा लेते थे और कोई नहीं कहता था, 'पंखा नहीं है।' काम आसान बनाने के लिए पंखे लगाए गए और लोगों को उनकी आदत हो गई। अब जब भी लोग किसी कमरे में कदम रखते हैं तो उनका हाथ स्वतः ही पंखे के स्विचबोर्ड पर चला जाता है। लोग इन सुख-सुविधाओं के इतने आदी हो गए हैं कि अब वे गर्मी बर्दाश्त नहीं कर सकते। एयर-कंडीशनर कभी विलासिता की चीज हुआ करती थी, पर अब हर व्यक्ति इसकी माँग करता है। यह बुनियादी अधिकार और आराम की जरूरत बन गया है।

जैसे-जैसे हम आराम के दायरे में आगे बढ़ते जाते हैं, हमारा शरीर और मन सहनशक्ति और बल खोते जाते हैं। हम जितने ज्यादा आरामपसंद होते जाते हैं, समस्याओं के उतने ही ज्यादा द्वार खुलते जाते हैं। परमहंसजी कहा करते थे, 'जीवन में संघर्ष होना चाहिए।' यह एक सचेत संघर्ष होना चाहिए। अगर जीवन में कोई संघर्ष नहीं है तो संघर्ष करने के लिए कुछ बनाएँ। उसे एक सचेत संघर्ष बनने दें क्योंकि वह आपको हमेशा आगे बढ़ने में मदद करेगा। अगर आप योग की यात्रा को देखेंगे तो पायेंगे कि यह संघर्ष की यात्रा है। यह शांति की यात्रा नहीं, बल्कि संघर्ष की यात्रा है जो शांति की ओर ले जाती है।

संघर्ष उन चीजों से है जिन्हें हम अपनी सीमाएँ और कमियाँ मानते हैं, और फिर उनसे आगे बढ़ना है। योग के मार्ग में हमें किसी ऐसी चीज का एहसास होता है जो उतनी प्रिय नहीं है – कोई रुकावट, बाधा, प्रतिबंध, पुरानी स्मृति या अनुभव। एक बार जब वह हटा दी जाती है तो रास्ता खुल जाता है। योग में किसी कठिन परिस्थिति से गुजरना एक संघर्ष है और उसे ऐसा ही बनना है। पातंजल योग सूत्रों के अनुसार व्यक्ति को उस संघर्ष का आत्मविश्वास के साथ सामना करना चाहिए – *स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः*। आप तभी सफल हो सकते हैं अगर आप दृढ़ रहें, अपने प्रयास को जारी रखें, आप जो चाहते हैं उस पर विश्वास करें और जो आप करते हैं उसका सम्मान करें।

– 18 दिसंबर 2019, गंगा दर्शन

यौगिक जीवन

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

योग का मुख्य विषय और लक्ष्य है – अपने अन्दर छिपी दिव्यता को जानना और जागृत करना। अभी आप अपनी दिव्यता से अनभिज्ञ हैं। योग के माध्यम से आपको यह कार्य करना है। रामायण के सुन्दरकाण्ड में एक प्रसंग आता है। जब सीता जी की खोज में निकले हनुमान अन्य वानरों के साथ समुद्र के किनारे आकर उसके विस्तार को देखकर हताश हो जाते हैं, तब उस समय जाम्बवन्त हनुमान को उनकी शक्ति और सामर्थ्य की याद दिलाते हैं। हनुमान आकाश में उड़ना जानते थे, लेकिन वे अपनी सिद्धि भूल चुके थे। तब जाम्बवन्त ने उन्हें आकाश में छलांग लगाकर समुद्र को पार करने के लिए प्रेरित किया।

हम भी आपको यहाँ केवल एक ऐसे तथ्य का स्मरण कराने आए हैं, जिसे आप पहले से जानते हैं, लेकिन भूल गये हैं। आप उस योग विद्या को भूल गये हैं जो इस धन्य भारतभूमि में पैदा होने के कारण आपकी अपनी धरोहर है। ये आपके पूर्वज ऋषि-मुनियों का आपके लिए अमूल्य वरदान है।

हम आपको कुछ सिखाने-पढ़ाने नहीं आए हैं, केवल आपको याद दिलाने आए हैं। आप पहले से ही सब कुछ जानते हैं। हम केवल उस परदे को हटायेंगे जिसने आपकी स्मृति को ढक रखा है। यह महान् विद्या हमें ऋषि परम्परा से प्राप्त हुई है और इसकी प्रासंगिकता प्रत्येक युग में है, चाहे वह सत्य युग हो या त्रेता युग। कलियुग में तो इसका अत्यधिक महत्त्व है ही क्योंकि इस युग में मनुष्य अपनी वास्तविक प्रकृति से बहुत दूर चला गया है।

यहाँ पर यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठ सकता है कि आखिर योग है क्या? योग सरल, स्वाभाविक जीवन जीने की कला है, जिसमें आप अपने आप को जानना सीखते हैं। इस समय आप ऐसा जीवन नहीं जीते। यदि आप एक सहज, प्राकृतिक जीवन जीते तो आपको किसी से पूछने की जरूरत नहीं पड़ती, आपका मन और शरीर ही आपको बतलाते कि क्या करना चाहिए। पंच महाभूतों से निर्मित यह शरीर प्रकृति की ही उपज है, इसलिए आप जिस भी जीवनशैली का चयन करते हैं, वह इनके अनुरूप होनी चाहिए। वह प्राकृतिक होनी चाहिए, कृत्रिम नहीं। आधुनिक युग में हम ऐसे अनेकों पदार्थ ग्रहण करते हैं जो प्राकृतिक नहीं होते और हमारे शरीर में असंतुलन

पैदा करते हैं। इसलिए जब हम योग की चर्चा करते हैं, तब हमें केवल आसन या प्राणायाम तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। ये तो योग के अंश मात्र हैं। योग का वास्तविक अभिप्राय यौगिक जीवनशैली से है।

आपको यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि रिखियापीठ, जो आधुनिक युग में योग के महानतम प्रवर्तक, स्वामी सत्यानन्द जी की साधना स्थली है, में योग नहीं सिखाया जाता। यह निर्णय सोच-समझकर लिया गया, हालाँकि रिखियापीठ के अधिकतर अन्तेवासी सुशिक्षित योग प्रशिक्षक हैं। हमने फैसला किया कि योग सिखलाने के बजाय हमें लोगों को यौगिक जीवन जीने के लिए प्रेरित करना है। दिनभर में केवल दस मिनट आसनों का अभ्यास कर लेना

पर्याप्त नहीं। यह तो वैसे ही हुआ जैसे सालभर पापों की गठरी बढ़ाने के बाद साल के अन्त में गंगास्नान करके दुबारा दुराचार के लिए तैयार हो जाना। एक तरफ आप लगातार विषाक्त पदार्थ ग्रहण कर रहे हैं और साथ ही यह चाह रहे हैं कि दस मिनट के योगाभ्यास से उनका निष्कासन हो जाय! यह सम्भव नहीं।

यदि आप अपनी जीवनशैली की गुणवत्ता को बढ़ाना चाहते हैं तो आपको यौगिक जीवन अपनाना होगा। लोग योग की ओर प्रायः तब अग्रसर होते हैं जब उनका जीवन असंतुलित हो जाता है, जब उनके शरीर, विचारों और भावनाओं में असामंजस्य आ जाता है। इस असंतुलन का निदान करने के लिए मात्र योगाभ्यास पर्याप्त नहीं, इसके लिए तो यौगिक जीवनशैली अपनानी होगी।

यौगिक जीवन के दो आधार हैं – संतुलन और अनुशासन। संतुलन का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हमें अपने चारों ओर की प्रकृति से मिल सकता है। प्रकृति पूर्णतया संतुलित है। दिन को रात संतुलित करती है और गर्मी को सर्दी। इस प्रकार प्रकृति अपने प्रत्येक आयाम में संतुलन बनाये रखती है। यही संतुलन आपको अपने जीवन के हर क्षेत्र में लाना है। आप कितनी देर सोते हैं, कितना भोजन लेते हैं, कितना बोलते हैं, कितना सोचते हैं – आपको इन सब चीजों को देखना और संयत करना होगा। संतुलन का यही अर्थ है। *अति सर्वत्र वर्जयेत्* – जीवन के हर क्षेत्र में मध्यम मार्ग अपनाइये। शरीर और मन तभी जवाब देने लगते हैं जब जीवन के किसी क्षेत्र में अति होती है। और तब आपको उस अति की भारी कीमत भी चुकानी पड़ती है।

अनुशासन एक ऐसा शब्द है जिसे सुनकर अधिकतर लोग घबरा जाते हैं। लेकिन देखा जाए तो जीवन के किसी भी क्षेत्र में उपलब्धि पाने के लिए आपको अपने आपको अनुशासित करना होगा। चाहे आप संगीतकार हों या व्यवसायी या गृहिणी, अपने कार्य को अच्छी तरह संपादित करने के लिए अनुशासन आवश्यक है। योग और अनुशासन कंधे से कंधा मिलाकर एक साथ चलते हैं। अनुशासन के बिना आप योग का अभ्यास करना तो दूर, उसके बारे में सोच भी नहीं सकते।

संतुलन और अनुशासन की नींव पर ही यौगिक जीवन का निर्माण होता है। आपको इसी यौगिक जीवनशैली को आत्मसात् करना है, मात्र आसन या प्राणायाम का अभ्यास नहीं। इस कार्यक्रम का मुख्य संदेश भी यही है जिसे आपको अपने साथ ले जाना है।

– 14 मार्च 2008, हैदराबाद

आसक्ति और इच्छा

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

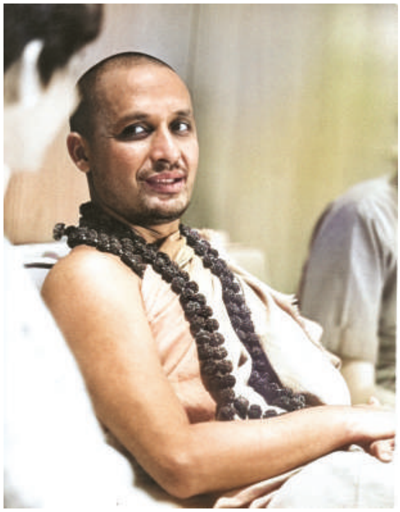

हमारे प्रत्येक कार्य का परिणाम होता है। चाहे हम व्यापार करें, घर-बार चलाएँ, बागवानी करें, खेती करें या अपने मित्रों से व्यवहार करें, प्रत्येक कार्य परिणाम उत्पन्न करता ही है। परिणाम या तो सकारात्मक, नकारात्मक या दोनों का मिश्रण होगा। सकारात्मक परिणाम का मतलब लाभ होता है, नकारात्मक परिणाम का मतलब होता है हानि और दोनों के मिश्रण का मतलब होता है – कुछ इच्छित और कुछ अनिच्छित की प्राप्ति। प्रत्येक कार्य का इन तीनों में से एक परिणाम होगा ही, चाहे वह कार्य सिर्फ वैचारिक स्तर पर ही क्यों न हो। जब हमको आसक्तियाँ होती हैं, तब हमारा चंचल मन शान्ति और स्थिरता के साथ परिणामों को स्वीकार नहीं कर पाता। इच्छाओं के होने पर हमारा मन सकारात्मक या नकारात्मक रूप से उनसे प्रभावित होता ही है।

आसक्तियों के रहने पर कुछ विशेष इच्छाएँ होती हैं। परिणामस्वरूप भय, चिन्ता और असुरक्षा भी होती है। तुम्हारे पास जायजाद या व्यापार हो, तो चोरी होने का विचार भी मन में साथ-साथ मंडराता रहता है। तुम्हारे पास बच्चे, संस्था, काम, राजनैतिक ओहदा आदि हैं और तुमको उनमें आसक्ति रहती है, तो इस हालत में असुरक्षा की भावना हमेशा बनी रहेगी और असफलता का भय भी। जब कुछ घटित हो जाता है, तब मन शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक समस्याएँ उत्पन्न करता है और घबराने लगता है। यही कर्म का निष्कर्ष, महत्त्व और परिणाम है।

इन भयों एवं चिन्ताओं से मुक्त होने के लिए हमें अपने लिए एक जीवन-दर्शन स्थापित और विकसित करना चाहिए – हम मात्र कर्मचारी या नाटक

के पात्र हैं, परिणाम या कर्मफल से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं, वे हमसे अलग हैं। हमें अपनी सीमा के भीतर केवल कर्म करते रहना है और इच्छारहित होकर आचरण करना है। परिणामों को, लाभ और हानि को नियंत्रण में करने वाले बहुत-से तत्त्व हैं। इसलिए इच्छाओं को रखना व्यर्थ है। यह उत्तम होगा कि हम अपने मन को सहज रूप से कुछ स्वीकार करने को तैयार करें। इस प्रकार मन को राजी कर लो, तब तो तुम्हारे सभी कार्य कर्मयोग बन जाएँगे। तब फिर तुम स्वयं को बच्चों, मित्रों, सम्पत्ति आदि की आसक्तियों में शामिल भी करोगे, तो भी तुम्हें कोई समस्या नहीं होगी।

सभी महान् ग्रंथों में कहा गया है कि पक्षी अपने दोनों पंखों के सहारे उड़ता है। एक पंख हो, तो वह उड़ नहीं सकेगा। इसी प्रकार एक पंख है ज्ञान और दूसरा पंख है वैराग्य। यदि ये दोनों गुण जीवन में विकसित कर लिये जाएँ तो हम परम सत्ता की ओर आध्यात्मिक उड़ान भर सकते हैं।

यदि हमारे पास वैराग्य है, तो इसका यह मतलब नहीं कि हम जीवनोपयोगी वस्तुओं को त्याग दें। हाँ, हमें उनकी सीमाओं को भी पूरी तरह जानना चाहिए। हमारे जीवन में इन्द्रिय-सुख एक निश्चित सीमा तक उपयोगी और आवश्यक हैं, मगर उसके बाहर जाने पर वे दुःखदायी ही होंगे। अतः विषय-भोगों की भी अपनी सीमाएँ हैं। इस सत्य का ज्ञान होना ही वैराग्य है।

ज्ञान क्या है? वह पुस्तकों का ज्ञान नहीं है। वह तो प्रत्येक वस्तु का बोधात्मक ज्ञान और समझ है। जब तुम्हें जीवन में मृत्यु, प्रेम, हानि और लाभ का ज्ञान होगा, तो तुम दुःखों से मुक्त और पूर्ण स्वतंत्र हो जाओगे। मृत्यु, प्रेम और घृणा से हमारे मन को भारी बाधा होती है, क्यों? इसलिए कि हम वस्तुओं को ठीक से देखना नहीं जानते। जीवन की घटनाओं को गलत दृष्टिकोण से देखने पर हम दुःखी होते हैं और ठीक दृष्टिकोण से देखने पर कोई फर्क नहीं पड़ता। इसी को ज्ञान कहते हैं।

गीता में अनासक्ति के सम्बन्ध में विस्तृत व्याख्या दी गई है। उसमें जीवन में कर्म-फल के बारे में तुम्हारा सच्चा दृष्टिकोण क्या होना चाहिए, यह भी बताया गया है। वस्तुतः गीता का प्रधान उपदेश है – अनासक्ति।

अनासक्ति का मतलब दो व्यक्तियों या वस्तुओं में मात्र बाहरी अलगाव ही नहीं है, इसका अभ्यास बिल्कुल दूसरे ढंग से करना चाहिए। हमें अपने व्यक्तिगत सम्बन्धों का पुनः विश्लेषण करना होगा, उनका पुनर्मूल्यांकन करना होगा। एक दृष्टान्त द्वारा इसे समझाता हूँ। मान लो, तुम्हारा एक बच्चा बहुत

बीमार हो गया है। तुम्हारी नौकरानी और नर्स, दोनों ही उसकी सेवा में लगे हैं। बच्चे की चिकित्सा में तुम शरीक नहीं हो, मगर अत्यधिक चिन्तित हो। तुम्हें रात भर नींद नहीं आती और बच्चे की चिन्ता बराबर बनी हुई है। क्यों? इसलिए कि बच्चे के साथ तुम्हारा निश्चित एवं पूर्वस्वीकृत रागात्मक सम्बन्ध है। बस, इसे ही आसक्ति कहते हैं।

नौकरानी और नर्स बच्चे की सेवा रात-दिन कर रहे हैं, लेकिन वे लोग उस स्थिति से भयभीत और परेशान नहीं हैं। इस सेवा के नाटक में वे लोग अपना काम कर रहे हैं और साथ ही उसके साक्षी भी हैं। इसे कहते हैं अनासक्ति। बच्चे के प्रति तुम्हारी प्रतिक्रिया आसक्तिमय है, क्योंकि तुम्हारा सम्बन्ध उसके साथ पूर्व-स्थापित है।

अब मान लो नर्स का बच्चा बीमार हो जाता है। उसे भी अब तुम्हारी तरह ही समस्या उत्पन्न हो जाएगी। इसलिए व्यक्ति को अपने कर्मों, अन्य लोगों तथा जीवन की परिस्थितियों के साथ अपने सम्बन्धों को पुनर्स्थापित करना होगा। अगर व्यक्ति की क्रिया-प्रतिक्रिया व्यक्तिगत स्वार्थ से रहित है, तो वह आसक्ति के बंधन में नहीं है।

इच्छाएँ

इच्छाएँ जीवन का आवश्यक अंग हैं, क्योंकि इच्छा करना जिन्दगी को पहचानना है। इच्छाओं के द्वारा ही तुम अपने व्यक्तित्व को और जीवन में अपनी स्थिति को जानते-समझते हो। कुछ लोग ऐसे हैं, जो इच्छा नहीं कर सकते और दूसरे वे लोग हैं, जो सदैव इच्छा करते रहते हैं।

सम्यक् रूप से विश्लेषण करने पर यह समझ में आता है कि इच्छा हमारे मन के अन्दर सच्चा बल है। हम बचपन में खिलौनों की इच्छा करते हैं, थोड़ा बड़े होने पर मित्रों की इच्छा करते हैं, फिर व्यवसाय और पैसे की इच्छा करते हैं और तब पारिवारिक जीवन और बच्चों की इच्छा करते हैं। कालान्तर में हम राजनैतिक पद और नाम-यश की इच्छा करना शुरू करते हैं। अंत में हम मानसिक शान्ति, स्थिरता, विश्रान्ति, ध्यान, भगवान और योग की इच्छा करते हैं। अब इनमें से कौन-सी इच्छाएँ संतुष्ट की जा सकती हैं और कौन-सी नहीं? इच्छाओं का अंतिम रूप क्या है?

वैदिक दर्शन का विश्वास है कि जीवन चार पुरुषार्थों पर आधारित है – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इच्छा सन्तुलित जीवन के बुनियादी तत्त्वों में से

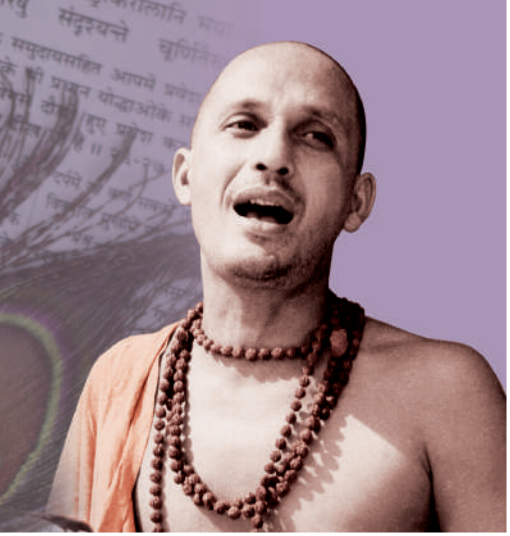

एक है। उसके बिना तुम विकास नहीं कर सकते। गीता के द्वितीय अध्याय में लिखा है कि सांसारिक वस्तुओं के साथ जीवन के साहचर्य से ही इच्छा की उत्पत्ति होती है। यदि तुम इच्छा नहीं करते, तो इसका मतलब है कि कहीं पर कुछ गड़बड़ी है। वह व्यक्ति जो इच्छा करने में सक्षम नहीं है, या तो जीवनमुक्त सन्त होगा या असाधारण चेतना वाला होगा।

नकारात्मक इच्छाओं के बदले अच्छा होगा कि सकारात्मक, सृजनात्मक इच्छाएँ की जाएँ। सकारात्मक इच्छाएँ अस्वार्थी होती हैं, अर्थात् तुममें अपने स्वार्थ की अपेक्षा दूसरों के कल्याण की इच्छा ज्यादा होती है। नकारात्मक इच्छा स्वार्थी होती है, तुम्हें केवल अपने लाभ की इच्छा होती है, तुम किसी और की परवाह नहीं करते। अब इसे समझना आसान हो गया। इच्छा स्वार्थी हो, तो वह नकारात्मक है। यदि वह स्वार्थपरक नहीं है, तो सकारात्मक है।

पहला सिद्धान्त है कि व्यक्ति अपनी इच्छाओं को पूरा करे। दूसरा सिद्धान्त है कि इच्छाएँ पूरी नहीं की जा सकतीं। अब मैं तीसरा सिद्धान्त बताता हूँ कि व्यक्ति इन दोनों का अभ्यास करे। संभव हो तो इच्छाओं की पूर्ति करने की चेष्टा करे और साथ-ही अनासक्ति भाव का भी अभ्यास करे।

इच्छा तो व्यक्ति के व्यक्तित्व का अभिव्यक्तिकरण है। अपने कमरे में अगर गंदा सामान रखोगे और फिर अगरबत्ती आदि सुगंधित चीज जलाओगे तो क्या होगा? उस सुगंध से तो वह दुर्गन्ध जाएगी नहीं। जब तक दुर्गन्ध का स्रोत, वह गंदा सामान वहाँ से हटाया नहीं जाएगा, तब तक दुर्गन्ध नहीं जाएगी। इसी प्रकार इच्छाओं को अपनी तरफ से कम करने की कोशिश नहीं करना। इसके बदले तुम्हें अपने मन के ढाँचे को, अपनी चेतना को इस तरह बदलने का प्रयत्न करना चाहिए, जिससे स्वाभाविक रूप से ही मन कम इच्छा करने लगे। इच्छा तो एक विशेष चित्त-स्थिति का प्रकाशन है, गुण है। जब मन उदास और बीमार रहता है, जब वह असुरक्षित रहता है या अतृप्त रहता है, तब तुम्हें अधिक इच्छाएँ सतायेंगी। जब मन पूर्ण संतोष में रहे, स्वस्थ और सुरक्षा भाव में हो, तब इच्छाएँ भी कम होंगी।

मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इच्छाओं को त्यागने या हटाने के बजाय उनके स्वरूप में गुणात्मक परिवर्तन करना चाहिए। इच्छाएँ तो सापेक्ष होती हैं। तुम्हारी परिस्थिति, प्रगति, आयु और अनुभव के अनुपात में वे बदलती रहती हैं। जब एक इच्छा से तुम ऊब जाते हो, तो स्वाभाविक रूप से दूसरी इच्छा में पहुँचते हो। हाँ, मगर एक इच्छा ऐसी होनी चाहिए, जो स्थायी रूप से तुम्हें प्रेरित और प्रभावित करती रहे। वह इच्छा क्या होगी, बताओ तो? आत्म-साक्षात्कार, आत्म-दर्शन, आत्म-ज्ञान या प्रभु-प्राप्ति की इच्छा। इस सर्वोच्च और अंतिम परमार्थिक इच्छा को सदा मन में धारण करो, इसे कभी त्यागना नहीं, इससे कभी ऊबना नहीं और इसे पूरा करने की दिशा में निरंतर प्रयास करते रहना।

हमने अपने आन्तरिक व्यक्ति को कभी नहीं देखा है, हम केवल बाहर वाले व्यक्ति को जानते हैं। निद्रावस्था और हमारे सपनों में उपस्थित रहने वाले व्यक्ति को हमने देखा है, लेकिन निद्रा से परे रहने वाले व्यक्ति को कभी नहीं देखा है। व्यक्ति की सजगता तो इन्हीं तीनों शरीरों तक विस्तारित होती है, मगर इनके परे भी तुम विद्यमान हो। तुम्हारा अस्तित्व बहुत आगे तक है। हाँ, अभी उस चेतना का इस चित्त के साथ तुमने सम्पर्क स्थापित नहीं किया है। उस बेचारे जीवात्मा का क्या होता है, तुम यह देख नहीं पाते। वह क्यों रोता है? इसलिए कि उसकी प्रतिज्ञा पूरी नहीं हुई है। और हम आज तक जो कुछ करते आ रहे हैं, उससे उसे संतोष या तृप्ति नहीं हुई है। अगर एक बार तुम अपने मन का प्रत्याहार करके अपने अन्दर में, जीवन की गहराई में जाओगे और आनन्दरूपी दिव्य चीजों को देखोगे, तो वह बेचारा जीवात्मा बहुत प्रसन्न हो जाएगा। उसको एक नयी जिन्दगी, नयी स्फूर्ति, नयी ज्योति मिल जाएगी। इसी आन्तरिक दुःख, क्लेश और उदासीनता के कारण वह व्यक्ति बाहरी सुखों के पीछे लगातार भागता चला आ रहा है। उसने उन सुखों में ही लिप्त और आसक्त रहते हुए अन्दर वाली निराशा को भी दूर करना चाहा।

इस विषय में अनेक महान् चिन्तकों ने बहुत कुछ कहा है। रमण महर्षि हमेशा कहते थे, 'अच्छी तरह से सोचो, मैं कौन हूँ?' लोग समझते नहीं हैं। उन्हें पता नहीं, आत्मज्ञान क्या है। अरे भाई, आत्म-दर्शन का मतलब हुआ कि तुम अपने मन को, अपने जीवन की गहराइयों को जानते हो। तुम्हें अपनी कमजोरियों, कुण्ठाओं और गुप्त रहस्यों को जानना चाहिए। तुम्हे स्वयं ही जानना होगा कि तुम अपने अन्दर में क्यों रो रहे हो।

गुण और भाव

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

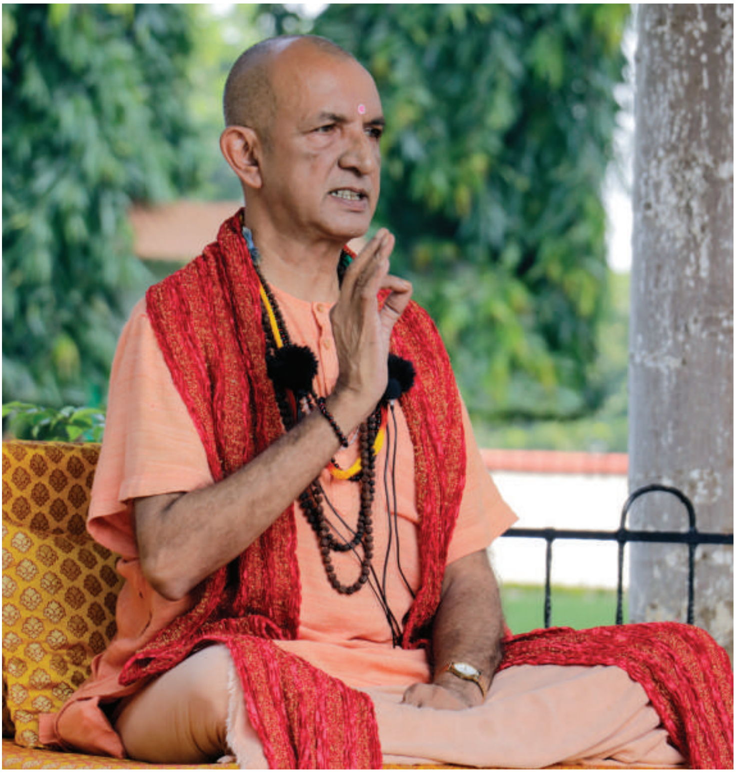

गुण प्रकृति के ऐसे लक्षण या विशेषताएँ हैं जो प्रत्येक प्राणी के स्वभाव और व्यक्तित्व को निर्धारित करते हैं। इन गुणों को सामान्य तौर पर तमस्, रजस् तथा सत्त्व के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। यद्यपि संख्या में ये केवल तीन हैं, परन्तु प्रत्येक प्राणी में इनके सम्मिश्रण-संयोजन का परिणाम अलग होता है। गुणों द्वारा ही मानव-कोशों की क्रियाएँ और अभिव्यक्तियाँ नियंत्रित होती हैं, जिनसे अंततः कर्मों की उत्पत्ति होती है। इसलिए गुणों की अवधारणा को तंत्र के दृष्टिकोण से समझना आवश्यक है।

सत्त्व का तात्पर्य बंधनमुक्ति और स्वतंत्रता से है। सत्त्व ऐसी प्रकाशमयी स्थिति को दर्शाता है जो शक्ति के प्रभावों और सीमाओं से मुक्त है। सात्त्विक

स्थिति में व्यक्ति के लिए किसी विशेष स्वभाव या व्यक्तित्व का निर्माण नहीं होता। वह हर दृष्टि से स्वतंत्र और बंधनमुक्त रहता है। दूसरी ओर तमस् का तात्पर्य मजबूत बँधनों के अधीन होने की स्थिति से है। तामसिक स्थिति स्वयं में नकारात्मक नहीं है, बल्कि यह एक सीमित और निश्चित स्वभाव की परिचायक है। रजस् का अर्थ है गतिशीलता या सक्रियता। राजसिक प्रकृति वह क्रियाशील माध्यम बनती है जो साधक को बंधन से बंधनमुक्ति या फिर बंधनमुक्ति से बंधनयुक्त स्थिति तक ले जाती है।

मान लीजिए कि कोई व्यक्ति अपने लिए बढ़िया घर बनाना चाहता है, लेकिन उसके पास पर्याप्त संसाधन नहीं हैं। तब वह घर बनाने के बजाय एक बना-बनाया मकान खरीद लेता है। खरीदा हुआ घर उसकी कल्पना से बिल्कुल अलग होता है, लेकिन फिर भी मजबूरी में व्यक्ति को उसी घर में रहना पड़ता है। अगर वह उस घर में नहीं रहना चाहता तो उसे अपनी पसन्द का नया घर बनवाने के लिए संसाधनों का इंतजाम करना पड़ेगा।

इस दृष्टान्त में जिस बने-बनाये घर को खरीदा गया, वह मन की तामसिक स्थिति को दर्शाता है, जिसका निर्माण प्रकृति और माया के रूप में कार्य करने वाली आदिशक्ति के द्वारा होता है। मन में जिस घर की कल्पना की गई, वह सत्त्व की बंधनमुक्त और स्वतंत्र स्थिति को दर्शाता है। रजस् को संसाधनों के संग्रह के रूप में, दृढ़ निश्चय और गतिशीलता के रूप में देखा जाता है, जो सात्त्विक स्थिति की प्राप्ति के प्रयास को दर्शाता है। सात्त्विक स्थिति सड़क के एक छोर पर स्थित आपका आदर्श घर है, तामसिक स्थिति सड़क के दूसरे छोर पर स्थित आपका वर्त्तमान घर है, और बीच में है रजस्, वह सड़क जिस पर चलकर ही आप अपने लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं।

भाव

व्यक्तिगत स्वभाव और प्रकृति को समझने के साथ ही तांत्रिक प्रक्रिया की शुरुआत होती है। इसके पहले कोई भी परिवर्तन या रूपान्तरण सम्भव नहीं। जब व्यक्ति की सृष्टि होती है तो गुणों के कारण उसके अन्दर विभिन्न लक्षण विकसित होने लगते हैं। जीवन में विभिन्न परिस्थितियों का सामना होने से प्रत्येक व्यक्ति में अलग तरह के चरित्र और लक्षणों का विकास होता है। कुछ विशेष तरह के अनुभव किसी को नकारात्मक और तामसिक बना सकते हैं, जबकि अन्य अनुभव किसी में सकारात्मक, आनन्दमय स्वभाव

पैदा कर सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की इस विशेष प्रकृति को बचपन में जीवन की विभिन्न परिस्थितियों की प्रतिक्रियाओं में देखा जा सकता है। व्यक्ति को उन घटनाओं और अनुभवों पर अवश्य विचार करना चाहिए जिनके कारण वह आज ऐसा बना है।

ये अनुभव व्यक्तित्व में किसी प्रवृत्ति, स्वभाव या लक्षण को जन्म देते हैं। तंत्र में ऐसी प्रवृत्ति को भाव के रूप में जाना जाता है। यही भाव व्यक्ति के चरित्र और प्रकृति को निर्धारित करता है। तंत्र शास्त्र के अनुसार मनुष्यों में तीन भाव प्रधान होते हैं – पशुभाव, वीरभाव तथा दिव्यभाव। ये तीनों भाव तीन गुणों के विभिन्न सम्मिश्रणों से प्रभावित होते हैं। तमोगुण के प्राबल्य से पशुभाव, रजोगुण से वीरभाव और सत्त्वगुण से दिव्यभाव की उत्पत्ति होती है।

पशुभाव

सृष्टि के क्रम में व्यक्ति माया से प्रभावित होता है। माया के कारण संसार, इन्द्रियों तथा इन्द्रिय-विषयों के साथ सम्मोहन की अवस्था रहती है। सम्मोहन की इस अवस्था में मन भ्रमित रहता है और इस भ्रम के कारण एक विशेष प्रकार की बंधनयुक्त मानसिकता का जन्म होता है। दैनिक जीवन में इस बंधनयुक्त मानसिकता की अनुभूति और अभिव्यक्ति को ही तंत्र की भाषा में पशुभाव कहा गया है। पशु वह है जो शक्ति के पाश में बंधकर शिव द्वारा निर्देशित होता है।

जो व्यक्ति तमोगुणी है, उसके भीतर पशुभाव प्रबल है और वह अपनी वासनाओं, इच्छाओं एवं कर्मों के अधीन रहकर बन्धनयुक्त जीवन व्यतीत करता है। घर-परिवार और धन-सम्पत्ति से आसक्ति तथा स्वार्थ की भावना पशुभाव के लक्षण हैं। पशुभाव विवेक की बजाय मूल प्रवृत्तियों द्वारा निर्देशित होता है। अधिकांश लोग पशुभाव से प्रभावित जीवन ही जीते हैं। तंत्र और योग शास्त्र के अनुसार ऐसे जीवन में चार मूल-प्रवृत्तियाँ होती हैं –

आहार – परिपूर्णता प्राप्त करने की तीव्र इच्छा पहली मूल प्रवृत्ति है जिसे आहार के रूप में जानते हैं। इसकी अभिव्यक्ति वासनाओं और इच्छाओं के द्वारा होती है जो तार्किक प्रक्रिया के अनुसार कार्य नहीं करतीं, बल्कि स्वाभाविक और भावनात्मक होती हैं। एक नासमझ नवजात शिशु भी इन इच्छाओं, जरूरतों और वासनाओं का अनुभव करता है – यह पहली मूल प्रवृत्ति होती है। भौतिक, इन्द्रियगत, मानसिक या आध्यात्मिक स्तर पर स्वयं

को तुष्ट करने की प्रवृत्ति कामना से शुरू होती है। कामनाओं को नकारात्मक नहीं समझना चाहिए, क्योंकि ये जीवन की अंतःर्निहित और प्राकृतिक अभिव्यक्तियाँ हैं जिनका विवेक द्वारा सही प्रबंधन किए जाने की आवश्यकता है। कुछ इच्छाएँ व्यक्ति की अभिव्यक्ति और सजगता को सीमित कर सकती हैं, जबकि अन्य इच्छाएँ उन्मुक्त और विस्तृत अभिव्यक्ति एवं सजगता की ओर ले जाती हैं। दोनों में समुचित भेद करके इनका सही इस्तेमाल किया जा सकता है। आध्यात्मिक विकास चाहने वाले साधक को अपने जीवन में यह भेद अवश्य करना चाहिए। इस प्रकार सम्मोहित व्यक्ति की पहली मूल प्रवृत्ति है – आहार, जो पशुभाव का एक घटक है।

निद्रा – दूसरी मूल प्रवृत्ति निद्रा है। जब चेतना इन्द्रिय-विषयों से अलग हो जाती है, तब निद्रा की अवस्था आती है। निद्रा की अवस्था में व्यक्ति शारीरिक रूप से इन्द्रियों और बाह्य वातावरण से अलग हो जाता है और चेतना की गहरी अवस्था में पहुँचकर शान्ति का अनुभव करता है। इसे एक सुरक्षा उपकरण के रूप में देखा जा सकता है, क्योंकि इसके बिना सम्पूर्ण मन-मस्तिष्क सूचनाओं के संग्रह से अत्यधिक भर जाएगा जिसे व्यक्ति संभाल नहीं पाएगा। इसलिए निद्रा चेतना को इन्द्रिय-विषयों से अलग करने के लिए आवश्यक है।

भय – तीसरी मूल प्रवृत्ति भय है। यह जीवन में अभाव या हानि का भय हो सकता है। याद रहे कि हमारी इच्छाएँ हमारे ब्रह्माण्डीय अस्तित्व से अलगाव के कारण उत्पन्न अभाव का परिणाम होती हैं, इसलिए भय भी व्यक्ति के आंतरिक अभाव की अनुभूति से संबंधित है। आधुनिक मनोविज्ञान में अनेक प्रकार के भयों का उल्लेख किया गया है, जैसे लोग हवाई जहाज में यात्रा करने से मना कर देते हैं क्योंकि उन्हें इस बात का भय होता है कि हवाई जहाज आसमान से गिर जाएगा, कीड़े-मकोड़ों से भय, खुले स्थान से भय इत्यादि। इस प्रकार भय बहुत प्रकार के होते हैं, लेकिन मूल प्रवृत्ति के रूप में भय जीवन में अनुभव किए जाने वाले इन सतही अनुभवों से कहीं अधिक गहरा होता है। मृत्यु का भय इस भय की चरम अभिव्यक्ति है। यह अपने संबंधों, रिश्तों, आसक्तियों, सुविधाओं, अपनी पहचान के समाप्त हो जोने का भय है। मृत्यु का भय मन में बहुत गहराई तक होता है और यह विभिन्न प्रकार के असुरक्षा भावों को जन्म देता है – जैसे शक्ति क्षय हो जाने का भय, ज्ञान के अभाव का भय इत्यादि।

मैथुन – चौथी मूल प्रवृत्ति है संभोग से संबंधित क्रियाएँ अर्थात् मैथुन। इसे एक मूल प्रवृत्ति समझा जाता है क्योंकि जब काम वासनाएँ जागती हैं तो विवेक शक्ति धूमिल हो जाती है। कहा भी गया है – *कामातुराणां न भयं न लज्जा* अर्थात् वासना के अधीन व्यक्ति को भय या लज्जा नहीं होती। यह एक बहुत ही शक्तिशाली भावना है जिसके कारण मन की स्पष्टता पूर्णतः समाप्त हो जाती है और मैथुन केवल एक शारीरिक क्रिया बनकर रह जाती है। व्यक्ति का विवेक धूमिल हो जाता है और सभी चीजों को इसी क्रिया के दृष्टिकोण से देखा जाता है; यहाँ तक कि प्रेम की भावना को भी मैथुन के रूप में परिभाषित किया जाता है। जब किसी के प्रति प्रेम का अहसास होता है, तब मैथुन की भावना एक स्वाभाविक इच्छा के रूप में जन्म लेती है, क्योंकि प्रेम को कभी सही तरीके से नहीं समझा गया है। प्रेम को हमेशा स्त्री और पुरुष के मिलन के रूप में देखा जाता है, इन्द्रियों और कामुक भावनाओं की संतुष्टि के लिए मैथुन संबंधित क्रिया-कलापों में लिप्त होना समझा जाता है। मतलब प्रेम को स्थूल, शारीरिक वृत्तियों तक सीमित कर दिया गया है।

पशुभाव वाले मनुष्य को इन चार मूल प्रवृत्तियों का सामना करना पड़ता है। मूल प्रवृत्तियाँ मन की अपरिपक्व अवस्था को दर्शाती हैं जहाँ मन उचित और अनुचित में भेद नहीं कर पाता है। ये मन की तामसिक स्थिति को भी दर्शाती हैं, क्योंकि इस स्थिति में स्पष्टता और समझ की बजाय केवल स्वार्थपूर्ण इच्छा होती है। स्वार्थपूर्ण स्वभाव से कामनाओं, वासनाओं, आवश्यकताओं और महत्त्वाकांक्षाओं का जन्म होता है।

महाभारत में दो विपरीत विचार वाले समूहों, पाण्डवों तथा कौरवों का वर्णन आता है। कौरवों के नेता, दुर्योधन से जब पूछा गया कि 'तुम इतने पाप क्यों करते हो? तुम दूसरों के साथ शांति और सामंजस्य बनाकर क्यों नहीं रहते? तुम दोनों समूहों के बीच युद्ध के लिए आतुर क्यों हो? तुम शांतिपूर्ण ढंग से एक साथ क्यों नहीं रह सकते?' तो दुर्योधन उत्तर देता है – '*जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः, जानामि अधर्मं न च मे निवृत्तिः* – मुझे मालूम है कि धर्म क्या है और अधर्म क्या है, उचित क्या है और अनुचित क्या है, परन्तु उचित बातों में मेरी कोई रुचि नहीं, और अनुचित चीजों से मैं स्वयं को अलग नहीं कर सकता।'

दुर्योधन के ये शब्द पशुभाव को दर्शाते हैं, जहाँ मन स्थूल व्यक्तित्व से उत्पन्न प्रवृत्तियों के प्रभावों के अधीन होकर केवल अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए कार्य करता है। जब तक इस समझ की जागृति नहीं होती कि मैं एक

बेहतर इन्सान बन सकता हूँ, तब तक मन की स्थूल स्थिति कार्य करना जारी रखती है। तंत्र के अनुसार सोलह वर्ष की अवस्था तक मन की तामसिक स्थिति प्रभावशाली बनी रहती है। लेकिन वर्तमान का वातावरण तमस् की स्थिति से निकलने नहीं देता, चाहे अवस्था सोलह वर्ष की हो, या बीस, तीस, चालीस या सत्तर वर्ष की ही क्यों न हो।

बाह्य वातावरण और माया की प्रबलता के कारण सम्मोहन की ऐसी प्रबल स्थिति रहती है जिसमें यह विश्वास पक्का हो जाता है कि तुष्टि और पूर्णता बाह्य संसार में ही सम्भव है और इसे मूल प्रवृत्तियों एवं महत्त्वाकांक्षाओं का अनुसरण करके पूरा किया जा सकता है। यह सम्मोहन व्यक्ति को विश्वास दिला देता है कि सामाजिक सम्बन्ध और आर्थिक संपन्नता ही उच्चतम उपलब्धि है, जबकि वास्तव में ये चीजें अशान्त और उद्विग्न मन का कारण बन जाती हैं। आनन्द की स्थिति को बाहर तलाशा जाता है जो सामाजिक पहचान और प्रसिद्धि की इच्छा द्वारा निर्देशित होता है। आखिरकार समाज व्यक्ति को क्या देता है और व्यक्ति समाज से क्या अपेक्षाएँ रखता है? व्यक्ति समाज से पहचान, मित्रता तथा सहचर्यता की आकांक्षा रखता है। समाज में इन तीन चीजों की खोज की जाती है और इन्हें प्राप्त करने की इच्छा मन की मूल प्रवृत्तियों का परिणाम है।

इस प्रकार जन्म से मृत्यु तक आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन की चार मूल प्रवृत्तियाँ अभिव्यक्त होती हैं। कुछ लोगों में इन प्रवृत्तियों को संतुष्ट करने

की तीव्र इच्छा होती है। जैसे-जैसे व्यक्ति इन मूल प्रवृत्तियों को पूरा करने में संलिप्त होते जाता है उसका मन सांसारिक और स्थूल होते जाता है, जिसके परिणामस्वरूप, नकारात्मक प्रवृत्तियाँ और अधिक मजबूत हो जाती हैं।

एक ऐसे बगीचे का उदाहरण लिया जा सकता है जहाँ बहुत सारे बड़े-बड़े, छायादार वृक्ष हैं, जिसके कारण उनके नीचे घास नहीं उग पा रही है। इसी प्रकार जब नकारात्मक प्रवृत्तियाँ मजबूत हो जाती हैं तब वे एक विशाल वृक्ष की तरह हो जाती हैं जो बगीचे में प्रकाश को प्रवेश नहीं करने देतीं। इन नकारात्मक प्रवृत्तियों की छाँव में सकारात्मक गुण पनप नहीं पाते। ये गुण भले ही अंकुरित हो जायें, लेकिन वे मजबूत नहीं, कमजोर ही रहेंगे। इसलिए, तांत्रिक दृष्टिकोण के अनुसार इन चार मूल प्रवृत्तियों के प्रबंधन से पशुभाव को जन्म देने वाली तामसिक स्थिति पर नियंत्रण प्राप्त करना आवश्यक है।

वीरभाव

एक बार जब इन चार मूल प्रवृत्तियों के प्रबंधन की योग्यता प्राप्त हो जाती है तब इस परिपक्वता से एक नये भाव का जन्म होता है जिसे वीरभाव कहते हैं, अर्थात् एक योद्धा की मानसिकता। इस अवस्था में तमस् का रजस् में रूपान्तरण हो जाता है। प्रेरणा, पुरुषार्थ, महत्त्वाकांक्षा और कर्म जीवन के अभिन्न अंग बन जाते है। इस प्रकार वीरभाव रजोगुण का परिणाम होता है। ये कर्म व्यक्ति के व्यवहार को निर्देशित करते हुए उसके चरित्र को विकसित करते हैं। तमोगुण तथा पशुभाव के प्रभाव के बावजूद आत्म-संयम तथा आत्म-नियंत्रण विकसित करना – यही वीरभाव के मुख्य लक्षण हैं।

तंत्र के अनुसार जब परिपक्वता प्राप्त हो जाती है और व्यक्ति संसार तथा उसके प्रभावों को देखने-समझने के योग्य बन जाता है तब जीवन में नकारात्मक समझे जाने वाले प्रभावों से संघर्ष करके अपने दोषों एवं विक्षेपों को ठीक करने का प्रयास किया जाना चाहिए। परिवर्तन की इच्छा तथा इस परिवर्तन के लिए प्रयास करने की योग्यता – यही एक वीर योद्धा के मनोभाव की पहचान है। योद्धा धारा के विपरीत तैरने का प्रयास कर रहा है, और इसके लिए अपनी पूरी शक्ति और सामर्थ्य की जरूरत पड़ती है। इसलिए इस चरण में योग और तंत्र की सभी विधियों का प्रयोग किया जाता है। आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध, योग निद्रा, प्राण विद्या, मंत्र, ध्यान – सभी का उपयोग किया जाता है जब व्यक्ति में नकारात्मक बन्धनों से जूझने की प्रबल प्रेरणा

होती है। जब साधक अपने इन प्रयासों से जीवन में कुछ परिवर्तन ला पाता है, तब वह मन की एक स्थिर और शांतिपूर्ण अवस्था में प्रवेश करता है। तब आंतरिक, सामाजिक तथा अन्य बाह्य संघर्षों में कमी आती है।

आध्यात्मिक साधक का मन जब शुद्धिकरण की प्रक्रिया से गुजरता है तब कुछ समय के लिए नकारात्मकता बहुत प्रबल हो सकती है। ऐसे समय में जब नकारात्मक शक्तियाँ सकारात्मक गुणों पर हावी होने लगती हैं, तब वीर भाव वाले साधक को चाहिए कि वह उन नकारात्मक लक्षणों को स्वीकारते हुए, उनका अवलोकन करते हुए, उनको समझते हुए और उन्हें बदलते हुए नकारात्मकता का सामना करे। नकारात्मक लक्षणों को सकारात्मक एवं रचनात्मक गुणों में बदलने का प्रयास होना चाहिए। योद्धा को अपने भीतर की बन्धनकारी तथा हानिकारक स्थितियों को बदलने के लिए तैयार और दृढ़संकल्प रहना चाहिए। योद्धा भाव का तात्पर्य अपने आप से लड़ना नहीं है, बल्कि इसका अर्थ है अपने भीतर के सद्गुणों एवं सकारात्मकता की रक्षा करते हुए हर परिस्थिति से अप्रभावित रहना। इस प्रकार योद्धा नकारात्मकता से लड़ता नहीं, बल्कि वह सकारात्मकता की रक्षा करता है।

स्वामी सत्यानन्द जी कहते थे कि यदि कोई साधक प्रकाश बिखेरना चाहता है तो उसे या तो दीपक बनना चाहिए या दीपक के प्रकाश को परावर्तित करने वाला दर्पण। स्वयं दीपक बन जाना बहुत बड़ा कार्य है, लेकिन प्रकाश को परावर्तित करने या नकारात्मकता की दिशा बदलने योग्य दर्पण बनना संभव है। नकारात्मकता की दिशा को बदला जा सकता है और साधक इससे अप्रभावित भी रह सकता है।

दर्पण का परावर्तित करने का गुण माया और व्यक्ति, दोनों में अंतर्निहित होते हैं। लेकिन तमोगुण और पशुभाव के प्रभाव के कारण माया की बन्धनकारी क्षमता द्वारा व्यक्ति तक जो भी परावर्तित किया जाता है वह उसकी एक काल्पनिक और गलत पहचान होती है। माया के पास शिव के प्रकाश को परावर्तित करने की क्षमता भी है, लेकिन यह जीवों द्वारा तभी देखा जा सकता है जब माया की सारी सीमाओं और बँधनों को तोड़ दिया जाए।

पशुभाव से वीरभाव की अवस्था तक जाने की प्रक्रिया में साधक यह समझना प्रारम्भ करता है कि वह माया के दर्पण में एक प्रतिबिंब मात्र है और उसे अपनी नकारात्मक प्रवृत्तियाँ एवं व्यवहार स्पष्ट दिखने लगते हैं। एक बार जब इन्हें स्वीकार और समझ लिया जाता है तब पशुभाव को बदलने की

प्रक्रिया प्रारम्भ होती है, जिसके लिए सकारात्मकता को विकसित करने तथा नकारात्मकता की दिशा को बदल देने के लिए प्रबल प्रयास करने पड़ते हैं।

भगवान बुद्ध के जीवन का एक उदाहरण है। एक व्यक्ति उनके पास आया और उन्हें गाली देने लगा। वह एक घंटे तक उन्हें हर किस्म की गाली सुनाता गया। एक घंटे तक भगवान बुद्ध शांति से बैठे रहे और जब वह आदमी अपनी पूरी भड़ास निकाल चुका, तब बुद्ध ने कहा, 'मेरे एक सवाल का जवाब दो।' उस आदमी ने पूछा, 'कैसा सवाल?' बुद्ध ने पूछा, 'यदि तुम किसी के पास कोई उपहार लेकर जाते हो और वह उपहार स्वीकार नहीं करता, तो तुम क्या करोगे?' आदमी ने उत्तर दिया, 'मैं उपहार वापस ले लूँगा।' बुद्ध ने कहा, 'तुमने मुझे अभी बहुत सारी गालियाँ उपहार में दी हैं, परन्तु मैं इन्हें लेना नहीं चाहता, इसलिए मैं इन्हें तुम्हीं को वापस कर रहा हूँ। तुम इन्हें अपने साथ ले जा सकते हो।' यह एक सच्चे, शांतिप्रिय योद्धा की मानसिकता को दर्शाता है। हिंसक और आक्रामक योद्धा उस व्यक्ति की गर्दन पकड़ लेता और कस कर दो थप्पड़ लगाता। ऐसा करने से नकारात्मकता और हिंसा ही बढ़ती जाती। लेकिन एक शांत योद्धा के रूप में साधक किसी भी चीज की दिशा बदल कर उससे अप्रभावित रह सकता है। यह वीरभाव है, ऐसी मानसिकता जो मन, व्यवहार तथा प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करने वाले सभी नकारात्मक प्रभावों की दिशा बदल देने में सक्षम है। जब दिशा बदलने की क्षमता विकसित हो जाती है तब आंतरिक नकारात्मकता की शक्ति तथा पकड़ कमजोर होने लगती है तथा सकारात्मकता के परिपक्व और अभिव्यक्त होने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

दिव्यभाव

दिव्यभाव ऐसी उच्च मनोवस्था है जो शांति, शुद्धता तथा आध्यात्मिक विकास के माध्यम से प्रतिबिंबित होती है। जब सकारात्मक गुणों की अभिव्यक्ति होती है और साधक इनका संरक्षण करने में सक्षम हो जाता है तब इस दिव्य स्थिति में प्रवेश होता है। यह दिव्य मनोवस्था संसार की परिस्थितियों, इन्द्रियजनित अनुभवों या मन की वासनाओं से प्रभावित नहीं होती। इसके बजाय यह अपना संतुलन और शुद्धता कायम रखती है। इसी मनःस्थिति को तांत्रिक साधक अपने प्रयासों और साधनाओं द्वारा प्राप्त करना चाहते हैं। सत्त्व गुण दिव्यभाव को जन्म देता है, इसलिए दिव्यभाव सात्त्विक प्रकृति अर्थात् प्रकाशयुक्त, शुद्ध, दिव्य, शांतिमय, सामंजस्यपूर्ण तथा संतुलित स्थिति को दर्शाता है।

दिव्यभाव में उच्च चेतना से संबंध जुड़ता है, जिसे साक्षात्कार के रूप में जाना जाता है। इस अवस्था में मन की स्थूल प्रवृत्तियों को परिवर्तित तथा शुभ एवं हितकारी गुणों को विकसित किया जा चुका होता है। इसलिए मन कारण-कार्य के बन्धन के अधीन नहीं रहता। मन संघर्षों का कारण नहीं बनता, वह विनाशकारी या नकारात्मक चीजों पर कोई प्रतिक्रिया नहीं करता, बल्कि सरलता से उन्हें अस्वीकार करके शिव-तत्त्व अर्थात् चेतन तत्त्व से जुड़ा रहता है।

दिव्यभाव में साधक अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और ईश्वर प्रणिधान जैसे यम-नियमों का पालन जीवन के ऐसे कर्तव्यों के रूप में करता है जो उसके सहज, सदाचारी व्यक्तित्व से समस्वरित होते हैं।

विकास की प्रक्रिया में साधक को पशुभाव से दिव्यभाव की ओर बढ़ना है। दिव्यभाव में मन एवं प्रकृति के 'पाश' को पार करके 'पति' अर्थात् ईश्वर से संबंध स्थापित किया जाता है। इसलिए तंत्र शास्त्र के अनुसार आध्यात्मिक जीवन में साधना के कारण दो बार रूपान्तरण घटित होता है – पहली बार पशुभाव से वीरभाव में रूपान्तरण, और दूसरी बार वीरभाव से दिव्यभाव में रूपान्तरण। दिव्यभाव की शुद्ध, संतुलित तथा मुक्त मनोवस्था के विकास के लिए तंत्र में अलग-अलग 'आचारों' की व्याख्या की गई है।

जब जन्मजात पाश्विक स्वभाव का ज्ञान हो जाता है तब संतुलन और सामंजस्य पाने के लिए इस पाश्विक स्वभाव का प्रबंधन एवं रूपांतरण करना होता है। मन से खर-पतवार तथा काँटों को हटाकर उनकी जगह सकारात्मक बीजों को बोना पड़ता है, जो भविष्य में अंकुरित हो सकते हैं। इन सकारात्मक बीजों का फल एक शांतिपूर्ण, आनन्दमय तथा स्थिर जीवन के रूप में मिलता है। ऐसे जीवन में साधक राग और द्वेष, सुख और दु:ख जैसे द्वन्द्वों से अप्रभावित रहते हुए द्रष्टा भाव के साथ जीवन के हर अनुभव को देखते जाता है। इस अवस्था में मन में समत्व, संतुलन तथा सामंजस्य की स्थिति बनी रहती है।

जीवन के बंधन

जीवन के विभिन्न अनुभवों के प्रभाव से व्यक्तित्व के गुणों का विकास होते जाता है। परिवार, समाज, संस्कृति या धर्म से आये ये प्रभाव मानव व्यक्तित्व में विशेष प्रकार के बंधन और परिस्थिति को जन्म देते हैं। ये बंधन इतने मजबूत होते हैं कि इनके विरुद्ध जाने वाली कोई भी चीज व्यक्ति द्वारा स्वीकार नहीं की

जाती। नये या अलग अनुभवों या विचारों के सामने अस्वीकृति का अवरोध खड़ा हो जाता है। व्यक्ति के व्यवहार में अस्वीकृति की यह एक स्वाभाविक, अचेतन प्रतिक्रिया होती है।

ऐसा सोचना कि हर चीज श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, करुणा तथा समर्पण पर आधारित है, यह मानव मन की कल्पना मात्र है। लोग प्रेम के बारे में कल्पना करते हैं, अटकलें लगाते हैं, क्योंकि उन्होंने वास्तविक प्रेम का कभी अनुभव नहीं किया है, प्रेम की जगह केवल कामुकता और वासना का अनुभव किया गया है। करुणा की कल्पना की जाती है, क्योंकि वास्तविक करुणा का कभी अनुभव ही नहीं किया गया है, यह हमेशा आत्म-तुष्टि से प्रेरित कर्म रहा है। बहुत सारे अच्छे गुणों की केवल कल्पना की जाती है, क्योंकि जीवन में उनका कभी भी अनुभव नहीं किया गया है और इस कारण एक तीव्र इच्छा का जन्म होता है। यदि इन सद्गुणों का अनुभव कर लिया गया होता तब तो कोई इच्छा बचती ही नहीं। इच्छाओं की उपस्थिति यह इंगित करती है कि इन्द्रिय जनित बंधनों के कारण उपर्युक्त गुणों का जीवन में अभाव है। यदि वास्तविक प्रेम प्राप्त किया जा चुका होता तो 'मैं अपने भीतर प्रेम का विकास कैसे करूँ?', 'मैं अपनी करुणा को कैसे बढ़ाऊँ?' या 'मैं अन्य लोगों के साथ कैसा व्यवहार करूँ?' जैसे प्रश्न ही नहीं उठते।

प्रेम, करुणा और अन्य सकारात्मक गुण तामसिक प्रकृति के अंग नहीं हैं, बल्कि वे सत्त्वगुण के दायरे में आते हैं। कामुकता और शारीरिक प्रेम में आसक्ति, स्वामित्व तथा दिल टूटने का दर्द शामिल रहता है जिससे बंधनों का निर्माण होता है, जबकि सात्त्विक प्रेम उन बंधनों से मुक्त होता है, यह आध्यात्मिक तथा रूपान्तरकारी होता है। इसी प्रकार, बंधनयुक्त मनोवस्था में जिस करुणा का अनुभव किया जाता है, वह वास्तविक करुणा नहीं होती। वह तो केवल अपने परिजनों एवं मित्रों की देखभाल करना भर है जब वे अस्वस्थ हो जाते हैं, लेकिन ऐसे अनजान व्यक्तियों के प्रति, जो बेहद बीमार या मरणासन्न तक हैं, कोई संवेदना प्रकट नहीं की जाती। इस प्रकार सभी सद्गुण तामसिक स्वभाव के बंधनों के अधीन हो जाते हैं।

तमस् से सत्त्व की ओर प्रगति

सामान्यतः व्यक्ति के गुणों को बदला नहीं जा सकता। गुणों के परिवर्तन एवं रूपान्तरण के लिए कर्मों की सजगता आवश्यक है। हाँ, गुणों के नकारात्मक

प्रभावों को बहुत हद तक कम किया जा सकता है यदि भाव को बदल दिया जाए। रजस् के द्वारा तमस् के प्रभावों को कम किया जा सकता है और फिर सत्त्व गुण को प्रबल बनाकर रजस् के प्रभावों को घटाया जा सकता है। यहाँ एक गुण की तीव्रता को घटाकर और दूसरे गुण की तीव्रता को बढ़ाकर गुणों में रूपांतरण किया जाता है।

यदि राजसिक गुण की तीव्रता को कम कर दिया जाए तो सात्त्विक गुण का स्तर अधिक मजबूत और प्रभावशाली हो जाएगा। अंततः जब सात्त्विक प्रकृति को मजबूत करके साधक दिव्यभाव को प्राप्त करता है, तब सभी गुण मिलकर एक हो जाते हैं और इसका परिणाम होता है, कर्मों से मुक्ति। जीवन की सभी परिस्थितियों, अनुभूतियों और प्रतिक्रियाओं का जन्म व्यक्तिगत स्वभाव के कारण होता है, इसके लिए गुण जिम्मेवार नहीं होते। इस संदर्भ में तांत्रिक मत यही है कि साधक अपने स्वभाव को बदल सकता है, परन्तु गुणों को नहीं।

अन्त में साधक तामसिक या सात्त्विक स्थिति में स्थापित हो जाता है। किसी को राजसिक स्थिति वाला कहना उपयुक्त नहीं, क्योंकि राजसिक प्रकृति का उपयोग या तो अधिक तामसिक बनने के लिए होता है या अधिक सात्त्विक। रजस् एक क्रिया है जो व्यक्ति को या तो सत्त्व की ओर या फिर तमस् की ओर ले जाती है। इसलिए तामसिक प्रकृति को पशुभाव की विक्षिप्त, नकारात्मक और विनाशकारी मानसिकता के रूप में देखा जाता है, जबकि सात्त्विक प्रकृति को दिव्यभाव की शुद्ध, प्रकाशयुक्त, संतुलित एवं सामंजस्यपूर्ण मनोवस्था के रूप में देखा जाता है। उत्साह, दृढ़ निश्चय, संकल्प शक्ति, महत्त्वाकांक्षा, आक्रामकता तथा अभिमान जैसी राजसिक प्रवृत्तियाँ वीरभाव से संबंधित हैं। रजस् मात्र एक परिवर्तन की प्रक्रिया है।

तंत्र शास्त्र की जीवनपर्यन्त शिक्षा का मूल सिद्धान्त यही है कि मन, व्यवहार और कर्मों की तामसिक अवस्था से राजसिक अवस्था में पहुँचा जाए, और फिर वहाँ से सात्त्विक अवस्था में प्रवेश करने का प्रयास किया जाए। जब साधक सत्त्व में स्थापित होता है, वह ऐसे जीवन की शांति और कांति को अनुभव करता है जो हर प्रकार की सीमा और बंधन से मुक्त होता है। आंतरिक प्रकृति की सजगता तब तक बढ़ती रहती है जब तक अंतरात्मा का अनुभव नहीं हो जाता।

योग के बीज

संन्यासी धर्मज्योति, नई दिल्ली

हमारे यहाँ 21 जून का अंतरराष्ट्रीय योग दिवस इस बार सिर्फ एक दिन का आयोजन नहीं, बल्कि बच्चों को योग से जोड़ने के दस दिनों के प्रयास का विस्तार था। 10 जून से न्यू मोती बाग कॉलोनी में 10 से 14 वर्ष के कुछ बच्चों के साथ हर सुबह योगाभ्यास द्वारा अनुशासन और सकारात्मकता के बीज बोने का क्रम प्रारंभ हुआ। दस दिनों तक बच्चों ने उत्साह और सहजता से अभ्यास किया और 21 जून को उन्होंने वयस्क साधकों के साथ मिलकर अंतरराष्ट्रीय योग दिवस मनाया। इस प्रकार यह दिवस केवल एक आयोजन न रहकर, सीखने, जुड़ने और योग को जीवन में उतारने का एक सुंदर अवसर बन गया।

21 जून की सुबह सभी साधक एकत्र हुए और दिन का प्रारंभ तीन मंत्रों तथा संकल्पों के साथ हुआ। इसके पश्चात् इस बार के बारहवें अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के लिए बिहार योग विद्यालय द्वारा निर्धारित योग साधना के अनुसार अभ्यास क्रम आगे बढ़ा। आसनों का अभ्यास श्वास और सजगता के साथ आगे बढ़ता गया। स्थिर खड़े रहने वाले आसनों के क्रम में एकपाद प्रणामासन की चुनौती बच्चों ने बड़ी गंभीरता से स्वीकार की, संतुलन बनाने का हर प्रयास उनके चेहरों पर साफ़ झलकता था। जबकि विपरीतकरणी आसन के दौरान वातावरण सहज ही हल्का हो गया – छोटे बच्चे उल्टे होने की कोशिश में बार-बार लुढ़क जाते और उनकी हँसी पूरे समूह में फैल जाती। शवासन बच्चों को कुछ क्षण रुककर स्वयं को अनुभव करने का अवसर देता रहा। इस प्रकार शरीर, श्वास और प्राण के प्रति जागरूकता स्वाभाविक रूप से गहरी होती गई। इसके बाद नाड़ी शोधन और भ्रामरी प्राणायामों का अभ्यास कराया गया।

सत्र का समापन दिनभर के कार्यों की समीक्षा के अभ्यास के साथ हुआ। बच्चों को सरल ढंग से समझाया गया कि दिन के अंत में कुछ क्षण स्वयं की समीक्षा करना एक ऐसी आदत है, जिसे प्रत्येक आयु का व्यक्ति सहज रूप से अपने जीवन का हिस्सा बना सकता है। साथ ही वर्तमान समय की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए इस बार के यम-नियम – दयालुता तथा संतोष को अपने दैनिक जीवन में अपनाने पर विशेष बल दिया गया।

इस पूरे प्रयास में सबसे सुखद बात केतन की सहभागिता रही। लगभग पंद्रह वर्ष पहले उसने अपनी माँ के साथ योग कक्षाओं में आना शुरू किया

था। आज वह स्नातक की पढ़ाई पूरी कर नौकरी के लिए साक्षात्कार दे रहा है, फिर भी युवाओं के लिए होने वाले रविवार के योग सत्रों का वह एक नियमित सहभागी है। इस बार जब भी उसे समय मिला, वह मेरे द्वारा संचालित दस दिवसीय बाल योग सत्रों में बच्चों के साथ अभ्यास में सहभागी बना। नए बच्चों को देखकर उसकी अपने बचपन की यादें ताज़ा हो गईं। मुस्कुराते हुए उसने कहा, 'अब समझ में आता है कि बच्चों को योग सिखाना कितना चुनौतीपूर्ण होता है। उनकी शरारतें भी कम नहीं होतीं!' उसकी यह बात सुनकर सभी मुस्कुरा दिए।

21 जून के मुख्य योगाभ्यास में भी उसने मेरे साथ सभी अभ्यासों का प्रदर्शन किया, जिससे बच्चों और अन्य साधकों के लिए अभ्यास का अनुसरण करना सहज हो गया। उसे इस भूमिका में देखकर सहज ही यह अनुभव हुआ कि बचपन में किया गया योगाभ्यास कभी व्यर्थ नहीं जाता। समय के साथ वही संस्कार आत्मविश्वास, जागरूकता और सेवा के रूप में जीवन में प्रकट होने लगते हैं।

इस वर्ष की एक और विशेष बात यह रही कि पिछले वर्षों से जुड़े कई साधक भी पुनः इस अवसर पर आए। उन्हें नियमित अभ्यास करते और नए साधकों के साथ सहजता से जुड़ते देखकर लगा कि योग का वास्तविक प्रभाव जीवन का धीरे-धीरे हिस्सा बनने वाली एक प्रक्रिया है।

हमारा यह छोटा-सा प्रयास बिहार योग की उस परंपरा को अधिक-से-अधिक लोगों तक पहुँचाने का है, जो योग को केवल शारीरिक अभ्यास नहीं, बल्कि जीवन में सकारात्मकता से जुड़ने का एक सरल मार्ग मानती है। बच्चों, युवाओं और वयस्कों का एक साथ अभ्यास करना इसी भावना का सुंदर उदाहरण था। यदि इस छोटे-से प्रयास से कुछ बच्चों, युवाओं और परिवारों के जीवन में योग के माध्यम से सजगता, दयालुता, संतोष और सकारात्मकता का एक छोटा-सा बीज भी बोया जा सका हो, तो हमारा प्रयास सार्थक है।

दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. **सामान्य दान**
   जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. **मूलधन निधि के लिए दान**
   बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए। **मूलधन निधि** से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. **सी.एस.आर. दान**
   जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान किसी भी निम्नलिखित लिंक पर क्लिक करके दिया जा सकता है।

SB Collect Online **HDFC Online**

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो **बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट** या **योग रिसर्च फाउण्डेशन** के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

श्रीकृष्ण योग पद्धति

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 78, ISBN: 978-93-81620-42-7

श्रीकृष्ण योग पद्धति, स्वामी निरंजनानन्द जी द्वारा बैद्यनाथेश्वर शंकरबाग, मुंगेर में फरवरी 2012 में दिये सत्संगों का विषय थी। इन सत्संगों में स्वामीजी ने गीता को एक नवीन दृष्टिकोण से समझाते हुए, इस शास्त्र में वर्णित विभिन्न साधनाओं का व्यावहारिक एवं प्रेरक निरूपण प्रस्तुत किया है।

उपलब्ध

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें –

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 9162783904, 9835892831 या **www.satyamyogaprasad.net** वेबसाइट देखें।

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

BIHAR YOGA

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा के समस्त ऑडियो, वीडियो तथा पुस्तक प्रकाशन प्रसाद रूप में *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर उपलब्ध हैं जिन्हें इस QR code को स्कैन करके देखा जा सकता है। ये *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना

स्वस्थ जीवन हेतु रचित यह कार्यक्रम *biharyoga.net* तथा *satyamyogaprasad.net* पर उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

• Registered with the Registrar of Newspapers, India
Under No. BIHHIN/2002/6306

ISSN 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2026

योगपीठ कार्यक्रम

नवम्बर 19–22	*पद्म जयन्ती – योगनिद्रा संगोष्ठी*
दिसम्बर 27–31	*पद्म जयन्ती – यौगिक जीवनशैली महोत्सव*
प्रत्येक शनिवार	*महामृत्युंजय हवन*
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	*गुरु भक्ति योग*

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

सितम्बर 28–अक्टूबर 6	*हठ योग एवं कर्म योग प्रशिक्षण*
अक्टूबर 11–19	*राज योग एवं भक्ति योग प्रशिक्षण*
अक्टूबर 25–नवम्बर 2	*क्रिया योग एवं तत्त्व शुद्धि प्रशिक्षण*
अक्टूबर 2026–अक्टूबर 2027	*संन्यास जीवनशैली अनुभव (अन्तरराष्ट्रीय साधकों के लिए)*

बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

नवम्बर–दिसम्बर	*द्विमासिक यौगिक अध्ययन (अंग्रेजी)*

अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए तथा योगविद्या पत्रिका को ऑनलाइन देखने के लिए बिहार योग की वेबसाइट – biharyoga.net पर जायें या बगल के QR code को स्कैन करें